श्रेष्ठ उपन्यास और कहानियाँ



हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकरने अबतक नीचे लिखे उपन्यास और कहानियाँ प्रकाशित की हैं:—

उपन्यास		कनकरेखा	१)
हृदयकी परख	१)	पुष्पलता	१)
छत्रसाल	१॥।)	रवीन्द्रकथाकुंज	१)
प्रतिमा	१।)	मानवहृदयकी कथायें	१)
अन्नपूर्णाका मन्दिर	१)	चन्द्रकला	१)
शान्तिकुटीर	१=)	नवनिधि	॥।)
आँखकी किरकिरी	१॥)	वीरोंकी कहानियाँ	।≡)
चन्द्रनाथ	॥।)	चित्रावली	॥=)
सुखदास	॥=)	**कहानियाँ**	
घृणामयी	१।)	श्रमण नारद	=)
कहानी-संग्रह		दियातले अँधेरा	≡)
		भाग्यचक्र	-)॥
फूलोंका गुच्छा	१)	सदाचारी बालक	=)॥

नोट—एक कार्ड लिखकर हमारा बड़ा सूचीपत्र मँगाइए।

हमारा पता—

मैनेजर—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ६७ वाँ ग्रन्थ।

घृणामयी।



लेखक—

इलाचन्द्र जोशी।



प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, बम्बई।

आषाढ, १९८६ वि०।

जून, सन् १९२९ ई०।

प्रथमावृत्ति।] सजिल्दका १॥।) [मूल्य १।)

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी, मालिक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई ।



मुद्रक—
मंगेश नारायण कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार, बम्बई २ ॥

घृणामयी ।

प्रथम भाग ।

१

घृणा ! घृणा ! मेरी सारी आत्मा आज घृणाके भावसे ओत-प्रोत है । मुझ हत्यारी नारीने आज समस्त प्रकृतिको, सारे विश्वको अपने अन्तस्तलकी घृणासे लीप-पोतकर एकाकार कर दिया है। इस अनत सृष्टिका अस्तित्व ही आज मेरे लिये केवल घृणाको लेकर है। स्त्रीका रूप देखते ही घृणासे मेरा खून खौलने लगता है, पुरुषकी छायासे भी मेरा हृदय जर्जरित हो उठता है। दिनके कोलाहलसे मैं बेतरह ऊब उठती हूँ, रात्रिकी निर्जन शान्तिसे मेरा दिल दहल जाता है। अनन्त सुख-दुःखमय जीवनधाराकी विचित्र लहरी-लीला देख देखकर मेरी आत्मा भड़क उठती है, और महामृत्युकी कल्पनासे भी मेरी रग-रगमें निविड़ उदासीनतामय घृणा व्याप्त हो जाती है। हाय मेरे भगवान् ! इस घृणामयी नारीकी क्या गति होगी ! किस विकराल अंधकारमय, अनतशून्यमय, निविड़ अवसादमय गहन गह्वरकी ओर इस क्रूरा, उत्तेजिता, हिंसामयी रमणीको तुम ढकेले लिए जाते हो ! हे मेरे अदृश्य देवता ! इस विपुल शून्यकी अनंत छायामें क्या कहीं भी मेरे लिये त्राण नहीं है ?

अबला ! इस हतभागे देशने नारीको अपने अबलापनपर गर्व करनेकी शिक्षा दी है। प्राचीनतम कालसे हमारे देशकी नारी इसी भावसे प्रेरित होती आई है। इसका फल यह हुआ है कि आज उसमें

न तो स्त्रीत्व ही पाया जाता है, और न पुरुषत्व ही । नपुसकके भाव भी शायद उससे कहीं अधिक पुष्ट होंगे । कायरकी क्रूरता प्रसिद्ध ही है। आज जब मेरी स्वजातिमें 'नई जागृति' फैलने लगी है तो उसकी चिर-दासत्व-जन्य कायरता अपना क्रूर रूप प्रकट करने लगी है ।

देशमें नारी-जागरणके प्रथम सूत्रपातकी भेरीने अपने भैरव-हुकारसे बड़े-बड़े वीरोंके दिल भी दहला दिए हैं । इस मगल-शखनादको सुनकर देशहितैपीगण गद्गद-भावसे पुलकित होकर आनदाश्रु बहा रहे हैं । मासिक-पत्रोंमें नई-नई उपाधि-प्राप्ता महिलाओंके चित्रोंकी धूम मची हुई है । कौन महिला एम० ए० की परीक्षामें सर्व-प्रथम हुई है, कौन महिला 'बार-प्रेक्टिस' कर रही है, किस रमणी-रत्नको ऑनरेरी मजिस्ट्रेटकी पदवी दी गई, किस वीरागनाने देशहितका व्रत ग्रहण किया है—इन्हीं सब विषयोंकी चर्चासे देशका वर्त्तमान वायु-मडल गूँज उठा है । ये सिद्धार्थिनी, कार्य-व्रती, वीर रमणियाँ धन्य हैं ! भगवान इनका मगल करें ! पर कहाँ हो तुम मेरी प्यारी सखी शकुतले ! तुम्हारी आत्मामें कभी 'नारीके अधिकार' और 'नारी-जागरण'का भाव उत्पन्न नहीं हुआ । तुमने कभी युनिवर्सिटीकी शिक्षा प्राप्त नहीं की । तुमने कभी राजनीतिक क्षेत्रमें धूम मचानेकी चेष्टा नहीं की । अपने अत -करणके स्वाभाविक माधुर्यसे पुष्ट होकर, अपनी चिरसंगिनी सहकार-लताकी तरह, तुम बिना किसी बाह्य ससर्ग और कृत्रिम चेष्टाके प्रकृति माताकी प्रिय कुमारीकी तरह विकसित हो चली थीं । कहाँ हो तुम प्यारी सखी ! आज इस चिर-दु खिनी, चिर-पापिनीको क्या किसी तरह भी तुम्हारे पवित्र चरणोंकी धूलि प्राप्त नहीं हो सकती ? हाय सखी, विंश शताब्दीकी उन्नतिके तुमुल कोलाहलसे उकताकर, वर्त्तमान युनिवर्सिटीकी शिक्षासे परितृप्त और सभ्य-समाजके शिष्टाचारकी धूलिसे लिप्त होकर मैं

तुम्हारे तपोवनकी विजन शांतिमें अपनी आत्माको निमज्जित करना चाहती हूँ। क्या कालके उलटे स्रोतमें वहकर मैं किसी प्रकार तुम्हारे पास तक नहीं पहुँच सकती, ?

२

दुःखकी ज्वालासे तप्त और पापकी यातनाओंसे उत्तेजित इस पापिनीकी रामकहानीको धैर्यपूर्वक सुननेवाले सहृदय पाठक कितने मिलेंगे ? हाय, जिस देशमें मैंने जन्म लिया है वहाँ पापियोंके प्रति समवेदना प्रकट करना जघन्य पाप समझा जाता है। भगवान्! तब क्यों मैं इस पुण्यके भारसे गुरु-गंभीर देशमें उत्पन्न हुई ? जीवनकी समस्त अनुभूतियोंसे परिचित होनेपर आज मुझे मालूम हो रहा है कि इस देशकी आत्मासे मेरे स्वभावका बहुत कम सामंजस्य है। प्राचीन ग्रीस देशकी उत्तप्त उत्तेजनासे मेरा स्वभाव गठित हुआ है। इस उत्तेजनाकी प्रचंड अग्नि आज तक मेरी आत्माके अतल गर्भमें समाधिस्थ थी। आज अचानक आग्नेय-गिरिके विलोल प्लावनकी तरह वह बाहरको फूट निकली है।

इलाहाबादके जिस विशाल भवनमें मेरा जन्म हुआ, उसकी विलासिता शहर-भरमें विख्यात थी। पर उस भवनका जो बदनाम था वह कहाँ तक सत्य था, मैं कह नहीं सकती। क्योंकि बचपनसे ही मैं उसके भीतरके राजसी जीवनमें एक ऐसी मधुर शांतिका अनुभव किया करती थी जिसकी कल्पना भी अब मैं किसी तरह नहीं कर सकती। हाय, भाई-बहनोंके साथ आनंदसे हिल-मिलकर रहने और निर्द्वंद्व भावसे मुक्त विचरकर खेलकूद करनेके उन प्यारे दिनोंको अतीतकी कराल छाया कितनी निष्ठुरताके साथ हरण कर ले गई! नवल-प्रभातके पक्षीकी तरह तब मेरी आत्मा कितनी निष्पाप, कितनी विशुद्ध, और कितनी

आनदमय थी ! भाई-बहनके बालकपनका निर्मल प्रेम ! कितना दुर्लभ और कितना अमूल्य है ! भाई ? धिक्कार है मुझ हत्यारीको ! किस जले मुँहसे यह शब्द मै अब निकाल सकती हूँ ? किस निर्लज्ज लेखनीसे इन दो अक्षरोंको लिख सकती हूँ ? भगवान् ! इस बेहयाईका क्या कुछ ठिकाना है ! जान बूझकर अपने प्यारे भाईकी हत्या करके उसीकी गुण-गाथा गानेका पाखड रचती हूँ ! कुछ भी हो, आज अतिम बार अपनी निर्लज्ज कहानी समस्त ससारको मुझे सुनानी ही होगी। जब तक वायुमडलके प्रत्येक अदृश्य अणुके साथ मेरी निर्लज्जता एकप्राण होकर मिल न जाय, तब तक मेरी उत्तप्त आत्माको कभी शांति मिलनेकी नही।

मैं कह रही थी कि उस विशाल भवनकी अव्यक्त शातिमें मेरी बाल्यावस्था बीती थी। हम तीन भाई-बहन थे। मैं सबसे बडी थी। मेरा नाम काकाने बडे लाडसे लज्जावती रक्खा था। (हाय, तब उन्हें क्या खबर थी कि उनकी लाडिली लडकी ऐसी बेहया निकलेगी!) मुझसे छोटा मेरा भाई राजेंद्रप्रसाद था। घरके सब लोग उसे रज्जन या राजू कहते थे। मुझ कलमुहीको भगवानने असीम सौदर्य प्रदान किया था। पर रज्जन हम तीनोंमें अधिक रूपवान्, गुणवान् और बुद्धिमान् था। मुझे बहुत ही छोटी अवस्थासे अपने इस भाईका बडा गर्व था और मै उसे जी-जानसे प्यार किया करती थी। भाई मेरे ! आज तुम्हारी बात लिखते–लिखते इन फूटी ऑखोंसे ऑसुओंकी झडी बह रही है। सारा अत करण पिघल-पिघलकर बाहरको निकलना चाहता है। हाय, मुझे कोई बतला सकता है कि किसी जन्ममें इस हत्यारीको फिर कभी तुम मिलोगे ! भैया, तुम जिस नक्षत्रलोकमें हो वहीं सुख और शातिसे रहो, मैं केवल इतनी ही प्रार्थना भगवानसे करती हूँ। मै सब तरफसे हार माननेपर भी यह आशा किसी तरह नहीं छोड सकती कि किसी-न–किसी जन्ममें तुम्हारे

दर्शन मुझे फिर मिलेंगे ही। तुम्हारे देवताके समान उन्नत चरित्रकी छत्र-च्छायामें रहकर मैं अपनी आत्माको तुम्हारे ही समान उन्नत बनानेकी चेष्टा एक बार अवश्य करूँगी। जहाँ कहीं भी हो, अपनी इस पापिनी, चिरदु:खिनी बहनको न भूलना! बाल्यकालमें हम तीन भाई-बहनोंने जिस निष्कलुष प्रेमके आनंदमें मगकर दिन बिताए थे, उस मधुर स्मृतिको कभी न बिसारना!

मेरी बहन लीला रञ्जनसे प्राय ढाई साल छोटी थी। जब मेरी अवस्था दस वर्षकी थी तो रञ्जन सात सालका था और लीलाने पाँचवें वर्षमें पदार्पण किया था। सारे घरसे हम लोगोंका कोई विशेष संबध नहीं रहता था। हम तीनोंकी दुनिया ही न्यारी थी। हम अपने ही खेल-कूद, राग-रंग और स्नेह-प्रेमके झगड़ेमें मग्न रहा करते थे। हमारी इस एकांत बाल्यलीलामें यदि कोई बाधा थी तो वह हमारी अद्भुत नामवाली 'गवर्नेस' मादमाजेल मार्या पावलोवना। इस अद्भुत रूसी महिलाको काका बंबईसे पकड लाए थे। बंबईमें वह उनके हाथ कैसे लगी, इसका इतिहास किसीको मालूम नहीं था। वह कब, कैसे और क्यों भारतवर्षमें आई, यह बात भी कोई नहीं जानता था। उसके माँ-बाप वास्तवमें रूसी ही थे या नहीं, काकाको इस संबधमें भी शक था। कुछ भी हो, वह अँगरेजी खूब अच्छी तरहसे बोलती थी और फ्रेंच, जर्मन आदि विलायती भाषाओंसे भी परिचित थी। हिंदोस्तानी भी वह टूटी-फूटी बोल लेती थी। 'क्यों' के बदले वह 'काहे' शब्द काममें लाती थी। ऐसे अद्भुत accent ` साथ वह 'काहे' कहती थी कि रञ्जन बिना हँसे नहीं रह हँसनेपर वह पूछती—"तुम काहे हँसते ` " भी जोरसे हँस पड़ता और

और ऑखोसे ऑसू निकल पड़ते थे। रञ्जनको हँसते देखकर मुझे भी हँसी आ जाया करती थी। मैं अक्सर उसके सामने नाच दिया करती थी और गाती थी—

अँगरेजी बोली हम बोला—
ट्वारि ट्वटि टुम!

कभी गाती—

बँगला नाचे बँगला नाचे नाचे गुसलखाना,
मेमसाहबकी चिट्ठी आई, जल्दी भेजो खाना!

वह खीझनेपर भी हँस पडती। मेरा नाम उसने 'टॉम बॉय' रक्खा था। हम लोग केवल 'मादमाजेल' कहकर उसे पुकारते थे। जब काका उसे पकड लाए थे, तब उसकी अवस्था शायद ३० वर्षसे अधिक नहीं होगी। पर उसके मुँहमे इसी अवस्थामें झुर्रियॉ पड गई थीं, गालोंकी हड्डियॉ साफ दिखलाई देने लगी थीं और ऑखोके नीचे गढे पड़ गए थे। रञ्जन उसे यह कहकर खिझाता था—"पावलोचना—ढल गया तेरा जोबना!" वह इस अज्ञान बालकके निष्पाप व्यंगका अर्थ नहीं समझती थी। एक दिन मुझसे पूछनेपर मैंने इसका अर्थ बतला दिया। तब तो मादमाजेल ऐसी बुरी तरह बिगड उठी कि हम दोनोंपर बेभावकी मार पडी। मार खा चुकने पर मैं रञ्जनको अपने सोनेके कमरेमें ले गई और उसे अपने गलेसे लगाकर उसका मुँह चूमा, उसकी पीठपर हाथ फेरकर दिलासा दिया। बेंतकी चोटसे हम दोनोंके हाथोंमें खून उछल पड़ा था और छाले पड गए थे। अपने हाथकी परवा न कर अपनी साड़ीके अंचलको मुँहकी भाफसे गरमकर मैं उसके हाथ सेंकने लगी। भाईकी पीड़ासे मेरा कलेजा फटा जाता था। मैं उसके हाथोंको सेंकती जाती थी और मेरी ऑखोंसे ऑसू बहते

जाते थे। रञ्जन शायद समझ रहा था कि मैं अपने दर्दकी वजहसे रो रही हूँ। इस लिये वह बीच-बीचमें पूछता जाता था—"दीदी, क्या बहुत दर्द हो रहा है?"

उस दिनसे हम दोनोंने मार्था पाबलोवनाका नाम 'मादमाजेल पूतना' रख दिया और इस नए आविष्कारसे हम दोनोंको बहुत प्रसन्नता हुई। और तो क्या, हम कभी कभी उसके सामने भी उसे पुकार बैठते थे—'मादमाजेल पूतना!' वह हमारी गलती सुधारकर कहती थी—'पाबलोवना कहो!' मैं अँगरेजीमें कहती—"माफ कीजिए, भूल हो गई! मैं फिर-फिर आपका नाम भूल जाती हूँ। क्या कहा—मादमाजेल पूतना?" वह झिड़ककर बोलती—"फिर वही गलती!" पर हम लोग बीच-बीचमें फिर-फिर वही गलती करके इसी नवाविष्कृत नामका इस्तेमाल करते थे। इस नामके अर्थका रहस्य उसे मालूम नहीं था।

२

मादमाजेल हमें अँगरेजी पढ़ाया करती थी और यथासम्भव अँगरेजीमें ही बातें करनेके लिये बाध्य किया करती थी। इसका फल यह हुआ कि हम लोग बहुत जल्दी शुद्ध अँगरेजी बोलना सीख गए। मादमाजेलने हमारे लिये विलायतसे चार-पाँच साप्ताहिक तथा मासिक पत्र मँगवा दिए। किस्से-कहानियोंसे भरे हुए उन पत्रोंको पाकर रञ्जन और मैं फूले न समाए। कहानियोंका चस्का बड़ा बुरा होता है। हम लोग इस लतमें ऐसी बुरी तरह फँस गए कि गवर्नेससे छुट्टी पाते ही खाने-पीनेकी सुध भूलकर कहानियोंके पीछे लग जाते। रञ्जन एक कुर्सी पकड़कर एक कोनेमें बैठ जाता और मैं एक कोचमें बैठकर पढ़ती। जब कोई हँसीकी या

अचरज-भरी वात होती तो हम एक-दूसरेको सुना दिया करते और फिर चुपचाप अपने मनमें पढने लग जाते।

मेरी अवस्था अब वारह वर्षकी हो गई थी और रज्जू नौ वर्षका था। लीला अक्सर अम्मोंके साथ रहती थी, पर अब वह भी धीरे--धीरे हम दोनोंके साथ हेलमेल वढाने लगी। काकाने मुझे 'क्रॉम्स्वेट' विद्यालयमें भरती करवा दिया। छठे दरजेमें मैं रक्खी गई। आरभमें तो मेरे लिये स्कूलमें समय विताना बडा दूभर हो गया। मै अवसर पाते ही अलग एक कोनेमें जाकर रोया करती और किसी लडकीसे बाते तक न करती। घर लौटकर रजनको देखते ही आनदसे फूली न समाती और पुस्तकोंको जमीनपर पटककर उसे अपनी दु खभरी बातें सुनाकर कलेजा ठडा करती। पर स्कूलकी लडकियाँ शायद आरभसे ही मुझे प्यार करने लगी थीं। इसका कारण मैं ठीक वतला नहीं सकती। शायद मेरे मुखमें एक करुण, सुकुमार और स्नेहपूर्ण काति वर्तमान थी, जिसकी अवज्ञा नहीं की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त मुझे इतनी छोटी अवस्थामें ही निशुद्ध अँगरेजी बोलते और लिखते देखकर भी शायद सबके हृदयमें मेरे प्रति प्रशसा उमड पडी थी। हाय, ससारको इसकी क्या खबर कि इस निपुल विश्वकी भीतरी आत्मामें प्रवेश करनेके लिये और भगवानकी अज्ञेय पाठशाळामें भरती होनेके लिये जिस आभ्यतरिक भाषाकी आवश्यकता है उसका ज्ञान न अँगरेजी सीखनेसे हो सकता है, न लैटिनसे और न ग्रीकसे। दुनियाको यह बात कैसे समझाई जाय कि अँगरेजी और फ्रेंचका ज्ञान होना अत्यत तुच्छ वात है। भगवानके यहाँ जिस ज्ञानकी कद्र होती है वह, संभव है, एक अशिक्षिततम कृषक-रमणीसे भी सीखी जा सके! खैर। इन सब फालतू बातोंसे मै अपने पाठक पाठिकाओंकी धैर्यच्युति नहीं करना चाहती। मेरे दर्जेकी और

बड़े दर्जोंकी लड़कियाँ भी मेरे प्रति अकारण प्रीतिका भाव प्रदर्शित करने लगीं । पंडितानियाँ भी मेरे ऊपर मेहेरबान थीं । धीरे-धीरे मैं लड़कियोंसे हिलमिल गई और डिबेट, ड्रामा आदिमें भाग लेकर स्कूल-भरमें सर्वप्रिय हो गई ।

स्कूलमें मुझे तीन वर्ष हो गए। इस बीचमें मैंने वहाँ जो 'अलौकिक ज्ञान' प्राप्त किया उससे परम पुलकित हो उठी । पर रह-रहकर एक अन्यमनस्क भाव अपने सुकुमार और मधुर विषादकी छायासे मुझे विकल करने लगा। संसारके कोलाहलमें सम्मिलित होनेपर भी मैं अपने हृदयकी निबिड़ निर्जनतामें ही दिन बिताने लगी । कभी बगीचेके एक बेंचपर बैठकर शरत्सन्ध्याके सूर्यास्तकी स्वर्णच्छटा देखती और हृदयमें एक प्रकारकी सुकुमार वेदना उमड़ पड़ती । ऐसा मालूम होता जैसे इस धूलि-मय कर्मचक्रके परे कहीं अनंगमोहन राजकुमारों और विलासवती परियोंकी प्रेमलीला आनंदकी लहरियोंके ऊपरसे होकर बहती चली जाती है, पर मैं यद्यपि परियोंसे कम रूपवती नहीं हूं, मेरा हृदय यद्यपि परियोंके हृदय-से कम रसमय नहीं है, तथापि मैं चिरकालके लिये उस राग-रंगमय लीलासे वंचित की गई हूँ। नारी-हृदयका मान-अभिमान कितना भयंकर होता है, इसे पुरुष-पाठक कैसे समझेंगे ? मुझ मानिनीका हृदय इसी विकट अभिमानके भावसे फूल उठता था। सुबहको जब मेरी नींद टूटती तो जिस विलासमय वेदनाका दीर्घनिःश्वास बेबस मेरे हृदयसे निकल पड़ता उसका वर्णन मैं कैसे करूँ ?

मुझे भय होने लगा कि धीरे-धीरे राजूके साथ मेरा संबंध विच्छिन्न होता चला जाता है। पर फिर भी हम दोनोंके स्नेह-प्रेमके झगड़े और खेल वैसे ही जारी थे। मैं अब भी उसे खिझाती थी । कभी कागजकी एक गधा-टोपी बनाकर बेमालूम उसके सिरमें डाल देती थी । कभी जब

वह कुर्सीमें वैठकर कहानी पढनेमें व्यस्त रहता तो उसे उठाकर और वातोंमें भुलाकर कुर्सीको चुपकेसे पीछे खिसका देती और तब उसे वैठनेके लिये कहती। वह ज्योंही वैठने जाता त्योंही धडामसे जमीनपर गिर पडता। मै खिलखिलाकर हँस पडती। वह नकियाता हुआ, वड-वडाता हुआ उठ वैठता और फिर मुस्कुराकर फ्रेंच भाषामें गाली देते हुए कहता—"ऑफॉ तेरिब्ल!" (Enfant terrible)* हम लोग अब फ्रासीसी भाषा सीखने लगे थे। कभी ऐसा होता कि मैं राजूको घूँसोंसे मारती और राजू भी उन घूँसोंका जवाब घूँसोंमें देता। इस घूँसे-वाजीको देखकर लीला रोती हुई अम्माँके पास जाती और हमारी शिका-यत करके उन्हें बुला लाती। एक दिन इसी तरह हम दोनोंकी घूँसे-वाजी चल रही थी। लीलाकी जासूसीके फलस्वरूप अम्माँ दबे पॉव आ खडी हुईं। अम्मॉको देखकर हम लोग बाघकी तरह डरते थे। हम दोनों सन्न रह गए। अम्मॉ कुछ मिनटों तक ऑखे लाल किए हुए चुपचाप खडी रहीं। फिर वोलीं—"शावाश लज्जा, शावाश! वाह रज्जू, तू भी बहुत होशियार हो गया है! यही तुम लोगोंकी पढाई हो रही है। कहाँ गई मादमाजेल पानलोप्ना? वह रॉड क्या यों ही दो सौ रुपए लेती है? इधर इन छोकरे-छोकरियोंकी यह हालत है! कोई देखनेवाला नहीं, कोई सुननेवाला नहीं। इनके काकाने इन्हें सिरपर चढा लिया है। जब लकडीकी मारसे इन लोगोंकी हड्डियॉ दुरुस्त की जातीं, तब कहीं ये ठिकाने आते! उस गोरी रॉडकी पॉचों घीमें तर है। कुछ मिहनत नहीं, कोई काम नहीं। घूमती-फिरती है, मोटरमें सैर करती है, नाच-पार्टियोंमें जाती है और हरामके दो सौ रुपए हर महीने वैंकमे जमा करती है।"

---

* वेजा वातें वकनेवाली वालिका।

'गोरी रॉड'से अम्माँ बेतरह जलती थीं। उनके लिये इसका कारण भी था। उन्हें शायद यह सदेह था कि काकाका उसके साथ अनुचित सबध रहता है। यह सदेह कहाँ तक सच था, मै कह नहीं सकती। पर काकाके प्रति मेरे मनमें यथेष्ट श्रद्धा थी। उनकी तीव्र बुद्धि, विशाल और स्नेहपूर्ण हृदय तथा उन्नत और मधुर स्वभावका मुझे गर्व था। अम्मॉसे मैं अपने मनकी कोई भी बात खोलकर नहीं कह सकती थी। पर काकासे कोई बात छिपा नहीं रखती थी, गुप्त-से-गुप्त बात भी बिना किसी झिझकके कह देती।

कुछ भी हो, अम्मॉकी झिडकियोंकी हमें आदतसी पड गई थी। इसलिये उनके चले जानेपर हम दोनों खूब जोरसे हॅसने लगे। लीलाको पकडकर मैंने उसे अपनी गोदमें बैठाया और उसका मुँह चूमकर पूछा—"तूने अम्मॉसे क्या कहा री पगली ?" वह चुप रही। मैंने फिर एक बार उसे चूमकर कहा—"दीदी और भैयाकी शिकायत अम्माँसे करने गई थी ? वह हमें जब मार बैठतीं तब ?"

वह बोली—"क्यों तुम भैयाको घूँसोंसे मार रही थी ?"

"अच्छा, अबसे नहीं मारूँगी भैना! तू भी शिकायत मत करियो। भला ?"

वह बोली—"नहीं करूँगी।"

४

काका हिंदोस्तान-भरकी बड़ी बड़ी देसी कपनियों और मिलोंके शेयरहोल्डर थे। वह विलायतमें भी एक छोटा-सा हिंदोस्तानी होटल खोलनेका इरादा कर रहे थे। उनकी गणना युक्तप्रातके सर्वश्रेष्ठ धनाधिपतियोंमें थी। इधर कुछ वर्षोंसे वह राजनीतिक क्षेत्रमें सम्मिलित

हो गए थे और चौबीसों घंटे राजनीतिक चर्चामें ही निमग्न रहते थे। प्रांतके बड़े-बड़े नेता उनसे मिलने आते थे और उनकी सलाह लेकर जाते थे। काका लोकमान्य तिलकके बडे कट्टर भक्त थे। सभीको माळूम है कि जब लोकमान्य अंतिम बार जेलसे छूटकर आए थे तो आते ही उन्होंने देशभरमें स्वराज्यकी धूम मचा दी थी। काका तब तक राजनीतिक सभाओंमें विशेष रूपसे भाग नहीं लेते थे। पर इस पुनर्जागृत आंदोलनसे उनकी चित्तवृत्ति भी भडक उठी। उनके जिस भवनका नाम पहले 'विलास-भवन' था, उसका नाम बदलकर उन्होंने 'स्वराज्य-भवन' रख दिया और खुले दिलसे राजनीतिक सम्मेलनोंमें सम्मिलित होने लगे। अनेक स्वदेशी संस्थाओंको उन्होंने आर्थिक सहायता दी। उनकी बातोंमें और उनके कार्यमें दृढता और सहृदयता थी। इसलिये थोडे ही दिनोंमें राजनीतिक क्षेत्रमें उनकी धाक जम गई। अम्मोंको भी उन्होंने जबर्दस्ती अपने साथ घसीटा। इसका फल यह हुआ कि वह भी सार्वजनिक सभाओंमें वक्तृता देने लगी और लोगोंके धन्य-धन्य रवसे उत्साहित होकर घर-गृहस्थीके सब काम भूलकर 'देशोद्धार' की चिंतामें लग गई। अम्मों जब देशहितकी खातिर नेताओंके साथ परामर्श करनेमें व्यस्त रहनेके कारण बाल-बच्चोंकी सुधि भी भूलने लगीं तो काकाको हमारे लिये एक 'गवर्नेस' रखनेकी चिंता हुई। मादमाजेल मार्या पावलोवना इसी चिंताका फल थी। इसके पहले हमारे लिये एक साधारण धाई नियुक्त थी।

जलियानवाला बागकी रक्तोत्तेजक घटनाके कारण देश-भरमें आत्म-बलिदानका रव गूँज उठा। अलकापुरीके स्वप्नोंसे मोहाच्छन्न मेरे नव-वसंत-मय हृदयमें इस घटनासे कुछ आघात पहुँचा, पर बहुत हलका। किंतु राजू एकदम अग्निमय हो उठा। उस समय उसकी अवस्था प्रायः

चौदह वर्षकी होगी। इस छोटी अवस्थामें ही वह उत्तेजित होने लगा और राजनीतिक विज्ञानके बडे-बडे जटिल ग्रंथोंके अध्ययनमें अपने दिन बिताने लगा। वह ऐंग्लो-इंडियन स्कूलमें पढता था। उसने विद्रोहकी उत्तेजनाके कारण स्कूलमें जाना छोड दिया। असहयोग आंदोलनके पहलेसे ही वह असहयोगी हो गया था।

राजनीतिक ग्रंथोंका उसने बहुत अध्ययन किया। पर उनसे उसे विशेष संतोष नहीं हुआ। हाँ, एक बात अवश्य हुई। वह यह कि उसे गंभीर विषयोंके अध्ययनका चस्का लग गया। आज तक वह मेरी ही तरह केवल तुच्छ किस्से–कहानियोंकी किताबोंको ही पढ़ा करता था। अब वह दर्शन, इतिहास, फिजिक्स, केमिस्ट्री, बायोलॉजी, और तो क्या डॉक्टरीकी किताबोंको भी मननपूर्वक पढने लगा। पाठकोंको अवश्य ही मेरी इस बातपर आश्चर्य होगा और यह अवश्य ही औपन्यासिक अत्युक्ति समझी जायगी। इतनी छोटी अवस्थामें ऐसे-ऐसे गहन विषयोंपर मनन करनेकी प्रवृत्तिका होना आश्चर्यकी ही बात है, इसमें संदेह नहीं। पर उसकी बुद्धि कैसी असाधारण थी और उसकी स्मरणशक्ति कितनी तीव्र थी, यह बात वे लोग जानते हैं जिन्होंने उसे देखा है। केवल बुद्धि ही नहीं, उसकी ज्ञान-पिपासा भी अत्यंत उत्कट थी। वह पब्लिक लाइब्रेरीमें जाकर घंटों वहीं समय काट देता।

अचानक उसे साहित्यकी धुन सवार हुई। संसार-साहित्यके पुराने और कीडों द्वारा नष्ट किए गए ग्रंथोंसे लेकर आधुनिकतम साहित्यिक रचनाओंका रस वह ग्रहण करने लगा। हमारे कुटुंबमें स्वदेशीपनका जोर होनेपर भी हिंदीकी चर्चा आवश्यकतासे भी कम हुआ करती थी। हिंदीकी कोई भी मासिक-पत्रिका हमारे यहाँ नहीं आती थी। फ्रेंच और अंगरेजीके चटकीले–भडकीले पत्र–पत्रिकाओंसे ही सब अल्मारियाँ

भरी रहती थीं। रजनने झट हिंदीकी दो तीन प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ मँगवाई। अब यह हिंदी लिखनेका अभ्यास करने लगा और थोडे ही दिनोंमें एक कविता लिखकर मेरे पास ले आया। उसकी यह नई मनोवृत्ति देखकर मै हँसते-हसते लोटपोट हो गई। उसकी कविताका अर्थ मैं कुछ भी समझ न पाई, केवल हँसते-हँसते मेरे पेटमें बल पड गए। उस कविताकी पहली दो पंक्तियां मुझे अभी तक याद हैं—

इस निष्ठुर भौतिक लीलाका पार नहीं पाया भगवान् !
दहल-दहल उठता है यह दिल सुन-सुनकर पैशाचिक गान'!

असलमें इस कवितामें हँसनेकी कोई बात नहीं थी। बल्कि उत्कट निर्भीषिकाका विष ही उसमें मथित हुआ था। पर मुझे कवितापर हँसी नहीं आई थी। हँसी आई थी रज्जनकी खामखयालीपर। रजनने यह कविता काकाको दिखलाई। काकाने उसकी हार्दिक प्रशसा की और इतने प्रसन्न हुए कि तत्काल एक हजार रुपयेका चेक लिखकर पुरस्कार-स्वरूप रजनको प्रदान कर दिया। उस समय रजनकी सुदर दैदीप्यमान आँखोंमें जो तीव्र उल्लास व्यक्त हुआ था वह अब तक मेरी आत्मामे अंकित है। भाईकी योग्यताके गर्वसे मेरी छाती फूल उठी। मैं यह बात नहीं छिपाना चाहती कि राजूको एक साथ एक हजारका पुरस्कार पाते देखकर मेरे हृदयमें नारी-सुलभ विद्वेषका भाव भी कुछ-कुछ जागरित हुआ था, पर इसके साथ ही उसके प्रति आतरिक स्नेह भी द्विगुण वेगसे उमड चला।

अपने कमरेमें ले जाकर राजूने मुझे उस कविताका भीतरी मर्म समझाया। एँसीरिया, बेबिलोनिया, मिसर और रोमकी प्राचीन सभ्यताओंका अध्ययन उसने खूब अच्छी तरहसे किया था। उसने समझाया कि भौतिक सभ्यताकी राक्षसी शक्ति उन्मत्त लास्य-लीलाकी कैसी कैसी

करामातें दिखला सकती है। बेबिलोनियामें लाखों टनोंके वज़नकी प्रकाड मूर्त्तियाँ लाखों दासों द्वारा सारे शहरमें फिराई जाती थीं। जगत्-प्रसिद्ध ईफेल टॉवरसे भी ऊँची गगनचुंबी मीनारें, सडकके हजारों फीट ऊपर, आकाश-मार्गसे होकर जानेवाले, मीलों तक विस्तृत राज-पथ, नाच-रग और पाशविक आमोद-प्रमोदके लिये रचे गए एक-एक वर्ग मील तक फैले हुए सुविशाल विलास-कक्ष, जीवनके आनदसे अपरिचित, स्वाभाविक स्वातत्र्यसे वचित, असख्य दास-दासियोंका बाजारमे क्रयविक्रय आदि अनेक रहस्यपूर्ण तथा रोचक ऐतिहासिक बातोका विस्तृत वर्णन करके उसने कहा कि सात हजार वर्ष पूर्वकी इस घोर राक्षसी ऍसीरियन सभ्यताने अपनी उन्मत्त शक्तिके विलाससे मानव-जीवनको कितना निरानद बना दिया था! मिसरकी सभ्यताका भी यही हाल था। रेगिस्तानके बीचमें दिलको दहला देनेवाले, आत्माको आतकसे कपित कर देनेवाले, भीषणाकार ठोस पिरामिडोंके निर्माणमें कितने असख्य नर-मुडोका सहार हुआ होगा, इसकी क्या कोई व्यक्ति कल्पना भी कर सकता है! वहाँके 'फारो' वशकी खामखयालियोंको तृप्त करनेके लिये मानवी आत्माका रस कितनी निर्दयताके साथ निचोड़ा गया था, इसका क्या कुछ ठिकाना है! रोमके 'कॉलीजियम' तथा अन्य प्रकाड विलास-गृहोंमें धनी दर्शकगण किस प्रकार गुलामोंकी निष्ठुर सहार-लीला देखकर तृप्त होते थे और राज्य-विस्तारके लोभसे सीजर प्रमुख शासकगण किस प्रकार महा-युद्धोंमें असख्य नरोंका विनाश साधित करनेमें व्यस्त रहते थे, यह बात उसने विस्तारपूर्वक समझाई। उसने कहा—तबसे आज तक मानव-जाति उसी प्रबल भौतिक शक्तिके ताड़नसे क्षत-विक्षत होती आई है। वर्त्तमान विष भरी सभ्यताकी फुफकार उसी प्राचीन गर्जनकी प्रतिध्वनि है। धर्म-ग्रथोंमें कहा गया है कि ईश्वर दयामय है। यदि शक्तिके ताड़-

नसे आहत असख्य प्राणियोंके हृदय-विदारक हाहाकारके प्रति वज्र-उदासीनताको ही दया कहते हैं, तो निर्दयता शब्द ही निरर्थक है। कर्मफलका सिद्धात बिलकुल ढोंग है। जो असहाय, अशिक्षित, कर्मजीवी लोग अपने अस्तित्वका ही अर्थ नही समझते, उन्हें कर्मोंका दड देना कभी न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। ऐसे सरल-प्रकृति, दीन-हीन व्यक्तियोंके ऊपर पाप-पुण्यका ढकोसला आरोपित करना अतिशय क्रूरता है।"

विश्व-नियन्त्रिणी किसी अज्ञात शक्तिके प्रति व्यर्थ आक्रोशसे गर्जन करते हुए राजू बोला—"इन्हीं सब बातोंको सोचकर मैं पागल हुआ जाता हूँ, दीदी! मानव-जीवनका क्या अर्थ है, मनुष्यकी अत्यत जटिल प्रकृतिका क्या नियम है, कोई व्यक्ति दस वर्ष जीए या सौ वर्ष, इससे क्या फर्क पडता है, राजनीतिक चर्चा, समाज-सुधार, ग्रथ-रचना, देशोद्धार और विश्व-विजयमें रत रहनेसे मनुष्य सचमुच अपनी उन्नति कर सकता है या नहीं, इन सब विचारोंसे मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। ससारके सभी श्रेष्ठ ज्ञानियोंकी रचनाओंका अध्ययन मैंने किया है। पर सभीकी बातें मुझे निखिलव्यापी निष्ठुरताके सामने पोपली लगती हैं। ससारके प्राचीन और आधुनिक नेताओंके सयानेपनके ढोंगसे मेरी आत्मा भडक उठती है—जैसे सृष्टिका सारा रहस्य इन लोगोंके करतलगत हो गया हो! इस अव्यक्त चक्रके व्यक्त पैशाचिक अट्टहासका मर्म अज्ञेय और अज्ञात है—इसे जाननेकी चेष्टा न कर, इस जटिल समस्याको सुलझानेके लिये प्रवृत्त न होकर जो लोग बाह्य कर्मोंसे मानव-जातिके उपकारका पाखड रचते हैं, वे प्राकृतिक अत्याचारके ऊपर अपना अत्याचार और जोडकर चिर-पीडित मानव-समाजको और भी अधिक भार-ग्रस्त करते हैं।"

कौतूहल, भय, विस्मय और हर्षने एक साथ मिलकर मेरे हृदयको आंदोलित कर दिया। मैंने स्पष्ट देखा कि मेरा यह असाधारण भाई संसारके रात-दिनके तुच्छ सुख-दुःखमें लिप्त होनेके लिये पैदा नहीं हुआ है। उसकी चिंता-धारा उसे किस अपरिचित लोकको खींचे लिए जाती है, यह सोचकर मैं आतंकसे काँप उठी। जिस भाईको मैं अपने तुच्छ जीवनके संकीर्ण मंडलके भीतर बाँधकर अपना ही समझे बैठी थी, आज उसके बंधन-मुक्त होनेकी प्रवृत्तिसे परिचित होकर भय-विह्वल-सी हो गई।

६

यदि सच पूछा जाय तो उस समय मैं रंजनको अच्छी तरहसे समझ भी नहीं पाई थी। आज समझने लगी हूँ। भीतर ही भीतर प्रतिभाकी कैसी उत्तप्त आँचसे पीड़ित होकर वह छटपटा रहा था! भगवान बुद्ध एक दिन इसी भीषण ज्वालासे झुलसे थे। बुद्धकी और उसकी विचार-धारामें बहुत कुछ अंतर था, इसमें संदेह नहीं। पर अग्नि चाहे किसी भी रूपमें हो, उसका गुणधर्म सदा एक-सा रहता है। अगर मेरे कारण उसकी हत्या न हुई होती तो आज संसार देखता कि विजन अंधकारका जो यह तारा शीतल-भावसे टिमटिमा रहा था उसके भीतर प्रलयातक वह्नि-ज्वाला लेलिहान हो रही थी। पर अब इन फालतू बातोंसे क्या फायदा!

कुछ भी हो, मैं समझ गई कि इस भाईको मैं प्यार किए बिना नहीं रह सकती, पर उसका साथ किसी प्रकार नहीं दे सकती। मैं अपने नव-मल्लिका-मय, मलय-कोमल, मोहाच्छन्नकारी, मधु-मय स्वप्नोंको लेकर ही दिन बिताने लगी। खाते पीते, सोते-जागते मुझे मेरे भीतर अव्यक्त रूपमें

स्फुरित हुए मृग-मदका सौरभ आकुल करने लगा। रज्जू प्रकृतिके भीतर शक्तिकी कठोरताको देखकर त्रस्त था, मैं उसीके कुसुम-कोमल माया-स्पर्शसे पिघली पड़ती थी।

हाय हतभागिनी नारी! पुरुषके बिना तुम्हारा जीवन ही नहीं है। पुरुषको लेकर ही इस अनतव्यापी, 'ईथर'—प्रकपित सृष्टिमें तुम्हारी सत्ता है, अन्यथा तुम शून्यकी तरह निस्तरग, जड और निर्विकार हो। पुरुषको अपने हृदयकी कमनीय सुकुमारतासे रिझानेमें ही तुम्हारी सार्थकता है। एक ओर तुम पुरुषके बलिष्ठ स्वभावकी गरिमाका प्रभाव अपने ऊपर अनुभव करके विकल पुलकसे रोमाचित हो उठती हो, दूसरी तरफ अनंत-सख्यक पुरुषोंको अपने रूप-जालमें दृढतासे जकड़े बिना तुम्हारी अतृप्त आत्मा छटपटाती रहती है। हे निष्ठुरा, मायाविनी, चक्रिणी नाग-कन्या! पुरुष-जातिके बलिष्ठ और उन्नत प्रेमके बिना तुम मृत हो, तथापि उसीके विनाशका सकल्प करके तुम सृष्टिमें अवतरी हो। हे बालभक्षिणी, भ्राता-संहारिणी पूतना! सतानके सुमगल स्नेहसे ही तुम रसवती हो, तथापि उसीके निग्रह, उसीकी हत्याका व्रत तुमने लिया है। हाय, मुझे कौन बतावेगा कि मैं किस जन्ममें और कैसे नारी-योनिसे मुक्ति पाकर या तो पुरुष-योनि या पक्षीकी योनिमें जन्म ग्रहण करूँगी! यदि पुरुष-योनिमें मेरा जन्म हो सकेगा तो सृष्टिके नाना कर्मोंमें सम्मिलित होकर मृत्युके दुस्तर सागरको पार करके अतमें अमृतमय आनदरूपमें एक-प्राण हो जाऊँगी। यदि पक्षी-योनिमें जन्म लूँगी तो जीवन-मृत्यु, पाप-पुण्य और स्नेह-प्रेमके बधनसे मुक्त होकर द्विधाहीन और चिंताहीन भावसे विशुद्ध सौंदर्य और निर्लेप उमगके रसमें डूबी रहूँगी।

कहाँ हो तुम अनुपम-रूपवती, ग्रीक-सुदरी हेलेन! एक ज़माना था जब तुमने समस्त पुरुष-जातिको अपने अलौकिक रूपके बलसे अपने

अचलके मृत्यु-मोहक जालमें जकड़ लिया था। हाय, रक्त-पिपासिनी, पुष्प-कोमलांगी दैत्य-बाला! तुम्हारे ही लिये ट्रॉयके प्रलयात्मक युद्धमें असंख्य नर-मुंडोंका विनाश हुआ था। अपने रूपके शोणित अस्त्रकी परीक्षामें रत रहकर अन्तको तुमने अपना ही विनाश किया था। अस्त्र-परीक्षाकी यही घातक प्रवृत्ति मेरे हृदयमें भी एक बार धधक उठी थी। ग्रीस देशके बड़े बड़े कवियोंने अपने काव्योंमें तुम्हारी ही गाथा गाई है। संभव है, इस पिशाचिनी नारीकी रूपगाथा भी भविष्यमें कोई कवि वर्णित करेगा। पर स्त्री-हृदयकी राक्षसीवृत्तिका पार क्या वीर और सहृदय पुरुष-जाति कभी पा सकती है?

७

पर इसी पुरुष-जातिने मुझे कितना धोखा दिया है, यह बात मैं किस मुँहसे और कैसे लोगोंको समझाऊँ? स्त्री-जातिके प्रति मेरे हृदयमें घातक भाव उमड पड़े है, इसमें संदेह नहीं। पर पुरुषके प्रति भी तो प्रतिहिंसासे मेरी आत्मा रह-रहकर काँप उठती है! नाश! नाश! मेरे लिये कोई आशा शेष नहीं रह गई है, देवता!—

काकाके पास मिलनार्थी लोगोंके आने-जानेका ताँता नित्य लगा रहता था। मैं भी अक्सर उनके कमरेमें आलस्यके भारसे झूमती हुई, बिना किसी उद्देश्यके, उनके बगलमें बैठ जाया करती थी, और यद्यपि मैंने प्रथम यौवनमें पदार्पण कर लिया था, तथापि बच्चोंकी तरह भरी सभामें उनके गलेसे लिपट जाती थी। कारण क्या था, मैं कह नहीं सकती, पर काका मुझे ही सबसे अधिक प्यार करते थे। मैं उनके मुँह लगी हुई थी और वह मेरी सब हठों और ज्यादतियोंको प्रसन्नता-पूर्वक सहन करते थे?

मैं विना उद्देश्यके तो आती थी, पर एक अस्पष्ट उद्देश्य मेरे अन्तस्तलमें वर्त्तमान रहता था। वह उद्देश्य था लुब्ध और मुग्ध पुरुषोंको अपने अतुल रूपसे छकानेका। हाय अधम नारी!

अधिक करके राजनीतिक चर्चा ही वहाँ छिड़ी रहती थी। यद्यपि मुझे राजूकी तरह ज्ञानकी पिपासा नहीं थी, फिर भी मदमाती आँखोंसे ससारको देखकर, अलसाते हुए मनसे संसारकी सभी बातें सुननेका शौक रखती थी। दुनियाकी सभी नई-नई बातोंमें मुझे किस्से—कहानियोंका—सा रस मिलता था। इसलिये काकाके पास एकत्रित हुए नेताओंपर अपने अस्त्रकी परीक्षामें रत रहकर मैं सभी बातें सुना करती थी। न तो किसी पुरुषके दर्शनसे मेरे हृदयमें अधिक प्रभाव पडता था, न किसीके दर्शनसे कम। केवल सबकी समष्टिके सामञ्जस्यसे मेरा हृदय उल्लसित हो उठता था। जब इस नित्यकी परिचित सभासे लौटकर मैं अपने कमरेमें आती तो एक आकाश—पातालव्यापी अवसादके भावसे मेरा हृदय दब जाता था। तब मैं रोनेकी इच्छा होनेपर भी नहीं रो सकती थी, सोचनेपर भी कुछ सोच नहीं सकती थी। केवल अपने अकेलेपनसे घबराकर काँप उठती थी।

अचानक इस वैचित्र्यहीन पुरुष-समाजके चिर-पुरातन वायु-मडलके ऊपर अपनी नवीनतासे तरगित होते हुए दो पूर्ण-यौवन-प्राप्त असाधारण युवक कैसे और कबसे मेरी आँखोंको विशेष रूपसे अपने अधिकारमें करने लगे, आरभमें मुझे इसका कुछ पता भी न चला। इन दोनोंमेसे एक सज्जन डाक्टर थे। उनका नाम कन्हैयालाल था। दूसरे महाशय कालेजके प्रोफेसर थे। उनका नाम किशोरीमोहन था। प्रोफेसर साहबको तो मैं पहलेसे ही जानती थी। वह "क्रॉथ्सवेट" की छात्रियोंको एक घंटा अगरेजी पढ़ानेके लिये आया करते थे। पर आज तक उनसे मेरा

संबध केवल गुरु-शिष्यका था। अब मुझे उनके साथ मित्रताका सबध स्थापित होनेकी आशा हुई। डाक्टर साहबको मैं पहले बिलकुल नहीं जानती थी। इन दोनों मित्रोंके शुभागमनसे मेरे जीवनका इतिहास विशेष रूपसे संबधित है। इसलिये इसी विषयकी चर्चा मैं मुख्य रूपसे करूँगी।

बहुत सभव है, इस अभागिनीकी कहानीको पढनेवाली कुछ ऐसी पाठिकाऐं भी होंगी जो पतिकी पूजामें, बाल-बच्चोंके पालनेमें, अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवामें, समस्त ससारके मगलार्थ तीज और मगलके पुण्य व्रत रखनेमें, कल्याणीया देवीकी तरह घर-गिरस्तीके काम-काजमें रत रहकर बडी कठिनाईसे फालतू किताबोंके पढनेके लिये समय निकालती होंगी। इन सब देवियोंको मगल-कर्मोंसे अनभिज्ञ इस पापिनीकी बातें बिलकुल अनोखी और अचरज-भरी जान पडेंगी। मैं जानती हूँ कि मेरी कथा ससारसे निराली है। मैं पुण्यमय गार्हस्थ्य जीवनसे अनभिज्ञ हूँ। पर फिर भी सभी नारियोंकी तरह मेरी नसोंमें भी तो प्राणकी वही एक ही धारा बह रही है। हे मेरी प्यारी माताओ और बहनो! इस अधम नारीके हृदयमें चाहे कितनी ही घृणा भरी हो, पर मैं प्रार्थना करती हूँ, तुम अपनी पवित्र आत्माओंको घृणासे मलिन न करके मेरी दु ख-भरी पाप-पूर्ण बातोंके उपर अपनी सुकुमार करुणा और सहृदयताका अमृत बरसा दो!

८

डाक्टर कन्हैयालाल और प्रोफेसर किशोरीमोहनमें गाढ़ी मित्रता थी। दोनों पुतलि, बोलनेमें तेज, बातें बनानेमें कुशल और सभा-चतुर थे। तुच्छसे-तुच्छ घटनापर भी ये मित्रद्वय अपने रचना-कौशलसे

ऐसा महत्व आरोपित कर देते थे और उसे इस तरह रोचक बना देते थे कि सब सुननेवाले दग रह जाते। थोड़े ही दिनोंमें इन मिलनसार मित्रोंने काकाकी सारी सभामें अपनी धाक जमा दी। शायद काकाको इन दोनोंका भीतरी हाल मालूम हो गया था। कारण कुछ भी हो, काका उनके वाक्-चातुर्यसे बिलकुल भी विचलित-से नहीं दीख पड़े। मुझे यह बात बहुत खटकी। मैं जीसे चाहती थी कि काकाके साथ उनकी घनिष्ठता बढ़े और मेरी ही तरह काका भी उनके प्रति आकृष्ट हों। पर इसके कोई चिह्न नहीं दिखलाई दिए।

उस दिन कॉलेजमें छुट्टी थी। दोपहरके समय काका अपने कमरेमें अकेले बैठकर कुछ अखबारोंको मेजपर रखकर शायद कोई देशहित-संबंधी लेख लिख रहे थे। मैं उनकी एकाग्रचितामें विघ्न डालनेके लिए बिना इत्तिलाके भीतर घुस गई।

काकाने पूछा —" क्या काम है ? "

मैंने कहा—" काम कोई नहीं। यों ही अखबार पढ़ने आई हूँ।"

बोले—" अखबार ले जाओ। अपने कमरेमें पढ़ो। "

मैं झूठ बोल गई थी। असलमें मैं अखबार पढ़ने नहीं, पर काका-के साथ व्यर्थकी बकवाद करके अपना दिल बहलाने आई थी।

मैंने उनकी बातपर ध्यान न देकर कहा—" क्या लिख रहे हो, काका ? "

बोले—" एक जरूरी लेख। इसमें बहुत-से नेताओंके दस्तखत होंगे। ' मेनीफेस्टो ' के रूपमें यह छपेगा।"

" किस विषयमें है ? "

काकाने आधा लिखा हुआ वह लेख मेरी तरफको खिसकाकर कहा—" इसे जोर से पढ़ो। कोई गलती रह गई हो तो सुधार लेंगे।"

मैं उस अँगरेजी लेखकको पढ़ने लगी। इतनेमें नौकरने आकर कहा—" दो आदमी मिलना चाहते हैं। "

दो आदमियोंके लिये बैठकके कमरेमें जाना फिजूल समझकर काकाने उन्हें उसी कमरेमें लिवा लानेका हुक्म दे दिया।

चकित होकर मैंने देखा कि मेरे मनोवाछित वही दो मित्र हैं। मैंने विस्मय-भरी दृष्टीसे दोनोंकी ओर ताका। उन दोनोंने भी मृदु-मद मुसकानसे मेरी ओर ताककर शायद यह प्रकट किया कि मेरे प्रति वे लोग उदासीन नहीं है। काकाने रूखी हँसी हँसकर दोनोंका अभिवादन किया।

पहले प्रोफेसर किशोरीमोहन बोले—" माफ कीजिए, हमारे आनेसे आपके काममें विघ्न पड़ गया। "

काकाने पूर्ववत् रुखाईके साथ हँसकर कहा—" नहीं, कोई ऐसा विघ्न नहीं हुआ। "

अपनी झेंप प्रोफेसर साहबने शायद पहले ही मिटा लेनी चाही। इसलिये काकाके बिना कुछ पूछे ही बोले—" हम लोगोंका कोई ऐसा खास काम तो था नहीं। यों ही आपके दर्शनार्थ चले आए। "

न मालूम क्यों, मैंने उसी दम यह कल्पना कर ली कि काका मन-ही-मन व्यंगके तौरपर कहेंगे—" बड़ी कृपा की। " कह नहीं सकती कि वास्तवमें उन्होंने मनमें क्या सोचा। पर वह बिना कुछ उत्तर दिए उसी रुखाईके साथ हँसते रहे। मुझे उनकी रुखाई बहुत खटक रही थी।

कुछ देर तक सब चुप रहे और कमरेमें सन्नाटा छा गया। यह सन्नाटा बड़ा अशोभन जान पड़ा। मैं अच्छी तरहसे जानती थी कि काका यदि चाहते तो बिना किसी चेष्टा या कष्टके इस अनिच्छित और

अनुपयुक्त निस्तब्धताको भग करके कोई भी रोचक चर्चा छेड सकते थे। पर वह जान-बूझकर चुप थे और शायद दो मित्रोंकी घबराहट और असमजस-भाव देखकर तमाशेका आनद लूट रहे थे। मुझे दोनों मित्रोंपर भी क्रोध आया और काकाके ऊपर भी। मित्रद्वयपर इसलिये कि आज अचानक उनकी वाक्शक्तिकी चपलता विलकुल तिरोहित हो गई थी। मैने सोचा कि काकाके सामने जिन व्यक्तियोंकी जबान ही-वद हो जाती है वे उनसे मिलनेके अधिकारी ही नहीं हैं। काकाकी निष्ठुर आमोद-प्रियतापर क्रोध आया।

काकाके स्वभावसे दोनों मित्र भली भॉति परिचित नहीं थे। उन्हें खबर नहीं थी कि सारे देशमें उनकी धाक यों ही नहीं जमी है। उनकी हठकारिता, व्यगप्रियता, बुद्धिकी तीक्ष्णता, तेजस्विता और सिद्धात-दृढ़ताके कारण ही उनके नेतृत्वकी इतनी प्रतिष्ठा है। अपने ओछे स्वभाव और छिछले ज्ञानकी चपलतासे लेहगा-मजलिसमें डींग मारनेवाले ये दो वीरवर शायद समझे बैठे थे कि काकापर भी अपने "व्यक्तित्व" की धौंस जमा सकेंगे। हाय काका! मानव-चरित्रसे परिचित होनेके कारण तुम पहले ही इन लोगोंकी पोल पहचान गए थे।

९

पाँच मिनिट तक सन्नाटा रहा होगा। पर इतना ही समय एक युगके बराबर बीता। सकोच, घृणा और ग्लानिके मिश्रित भावसे मेरी पीठकी रीढ़से होकर कॉटे चुभनेकी-सी हलकी वेदना और मैलेरिया बुखारकी-सी कँपकँपी दौड़ गई। बातें बनानेमें डाक्टर कन्हैया-लाल दोनोंमें ज्यादा होशियार थे। दोनोंमें अधिक रूपवान भी वही थे। उनके रूपमें सबसे अधिक विशेषता उनकी आँखों और मूँछोंमें थी।

उनकी ऊंची-लम्बी, बड़ी-बड़ी आँखोंकी चितवनमें एक ऐसा नशा—सा रहता था जिसका वर्णनमें ठीक तरहसे नहीं कर सकती। स्वामी विवेकानदको मैंने कभी नहीं देखा। मेरे पैदा होनेके समय वह इस ससारमें थे या नहीं, यह भी मुझे ठीक माळूम नहीं। पर उनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंके चित्रोंका एल्बम मैंने अवश्य देखा है। परिणत युवावस्थामें और उसके बाद उनकी आँखोंमें जो एक नशीला उद्दीप्त भाव प्रतिक्षण झलका करता होगा उसी किस्मकी झाँई डाक्टर कहैयालालकी आँखोंमें भी मैंने पाई। मुझे यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता था कि आचार—विचारमें स्वामी विवेकानदके पैरोंकी धूल झाड़नेके योग्य न होनेपर भी यह अद्भुत सादृश्य कैसा! उनकी मूँछोंमें और भी अधिक विशेषता थी। जर्मनीके भूतपूर्व सम्राट्, पुरुष-सिंह कैसर विल्हेल्मकी शेरबबरकी-सी मूँछें जगत्-विख्यात हैं। जिन लोगोंने कैसरकी पक्षपात-रहित जीवनी पढी है और उनका चित्र देखा है, वे जानते है कि इन मूँछोंके रौबका कैसा महत्व है। डाक्टर साहबकी बडी-बडी, घनी-घनी, काली-काली, सिरोंपर ऊपरकी तरफको मुडी हुई मूँछोंमें भी वही रौब था। पर यह होनेपर भी कैसरके स्वभाव और चरितका भीतरी सादृश्य डाक्टर साहबमें बिलकुल भी नहीं पाया जा सकता था। प्रकृतिकी इस अद्भुत दगाबाजीकी धोखेबाजीसे मुझे पीछे बहुत कुछ शिक्षा मिली थी, इसमें सदेह नहीं। पर उस समय तो मे इसे देखकर चकरा गई थी। हाय! नेपोलियनने भी अपनी जनानी सूरतसे ससारको छला था। उनकी सूरत देखकर कौन कह सकता था कि यह दुबला-पतला, नपुसकके समान रूपवाला व्यक्ति विश्व-विजय करनेके योग्य है! डाक्टर साहबका बाह्य रूप देखकर भी कोई यह नहीं कह सकता था कि इस सिंहके समान दर्शनीय पुरुषके भीतर नपुंसकोचित भाव-छिपे होंगे।

कुछ भी हो, वह अखड नीरवता पहले कन्हैयालालने ही भंग की। वह बोले—"आज मेरे पास एक देवीजी आई थीं। वह अपने इलाजके लिये आई थीं, पर उनसे कई और भी बातें हुई। उन्होंने एक यह नया विचार प्रकट किया कि ऑल इडिया काग्रेस कमेटीके आगामी अधिवेशनमें यह प्रस्ताव पेश किया जाय कि हिंदोस्तान-भरकी सब वेश्याओंको काग्रेसकी सदस्या बनानेके लिये देश-भरमें प्रचार-कार्य होना चाहिए। उन्होंने सुझाया है कि वेश्याओंमें सार्वजनिक जीवनकी वृत्ति जागरित होनेसे उनका पतित जीवन भी सुधर सकेगा और देशको भी सहायता मिलेगी। 'फीमेल इमेंसिपेशन' की हवा जितनी जल्दी वेश्याओंमें फैल सकती है उतनी घर-गिरस्ती स्त्रियोंमें नहीं। मेरे विचारमें भी वेश्याओंके सुधारके आदोलनका आरभ इसी ढगसे होना चाहिए। यह तरीका 'प्रेक्टिकेबल' भी है।"

मै डाक्टर साहबकी बातें भी सुन रही थी, और बीच-बीचमें उत्सुकता-पूर्वक काकाके चेहरेके भावोंपर भी ध्यान देती जाती थी। उनके मुखमडलमें व्यगकी चिर-परिचित हँसी धीरे-धीरे स्फुरित होती जाती थी। अतको वह हँसी चमकती हुई तलवारकी तरह निष्ठुरतापूर्वक झलक उठी।

वह बोले—"जी हाँ, इसमें क्या शक! आपकी बात बिलकुल सही है। सुधार हो तो वेश्याओंका हो! वेश्या-सुधारके बिना देशोद्धारका लुत्फ़ ही जाता रहता है। इसलिये आजकलके 'डॉन किकज़ोट'-सप्रदायकी प्रवृत्ति ही इस ओर है। 'पतित बहनें', 'फालन सिस्टर्स', 'अभागिनी देवियाँ' आदि कानोंको ठढक पहुँचानेवाले नामोंसे वेश्याओंके प्रति समवेदना प्रकट की जा रही है। यह देशके कल्याणके ही चिह्न हैं, इसमें संदेह ही किस बातका! इधर घरकी औरतें जूतोंसे ठुकराई जा

रही हैं, भगवानकी इस आनंदमयी सृष्टिमें उनकी कोई सत्ता ही नहीं मानी जाती। भाग्यके परिहाससे हमारे देशमें भी अब यह बात देखी जाती है कि पुरुषोंके राजनीतिक जीवनका ढकोसला ही ईश्वर और प्रकृतिके आदर्शके अनुकूल समझा जाने लगा है और स्त्रियोंकी घर–गिरस्तीका मंगलमय जीवन—जिसके कारण ही इस दु खमय सृष्टिका कुछ अर्थ हो सकता है—अत्यत तुच्छ, अकिंचित्कर, बेकार और 'सुपरफ्लुअस' समझा गया है। धीरे-धीरे हमारे समाजमें यह धारणा बद्धमूल होती जाती है कि सार्वजनिक जीवन ही स्त्रियोंकी उन्नतिका मूल है, इस जीवनके बिना स्त्रियोंका अस्तित्व ही अर्थ-रहित है। रात-दिन सास-ससुर, पति-पुत्र, माता-पिता और भाई-बहनकी निष्काम सेवामें रत रहकर हमारे गाँवोंकी अशिक्षिता स्त्रियाँ जीवन-चक्रमें अपनी इच्छासे पिसती जाती हैं और कर्मके कोल्हूमें अपने हृदयोंको पेरकर उनका तेल निकालनेमें लगी हैं,—इस सुदुर्लभ और अत्यत उन्नत आत्म-त्यागकी महत्तापर कोई ध्यान देना नहीं चाहता। आत्म-त्यागकी महत्ता अब केवल सभा-समितियोंमें व्याख्यान देने और कौंसिलोंका श्राद्ध करनेमे ही रह गई है।"

काका अम्मेंकि राजनीतिक जीवनसे सभवत यथेष्ट शिक्षा पा चुके थे। गृहस्थ-सबधी कर्मोंकी देख-रेख और सतानके लालन-पालनसे विमुख होकर चिंताहीन, और उत्तरदायित्व-रहित सार्वजनिक जीवनकी वाहवाही लूटनेके लिये कितना "त्याग" स्वीकार करना पडता है, यह बात वह भली भाँति जान गए थे। पर कुछ भी हो, उनके मुँहसे इस प्रकारके उत्तरकी प्रत्याशा कोई भी नहीं कर सकता था। जो व्यक्ति स्वय राजनीतिक नेताओंका अग्रणी हो, जिसकी स्त्री राजनीतिक क्षेत्रमें विशेष ख्याति प्राप्त कर चुकी हो, जिसकी लड़कियाँ भी नवीन शिक्षाका आलोक प्राप्त करनेमें लगी हों, जिसका भूतपूर्व जीवन विलासिताके लिये बदनाम हो,

उस व्यक्तिके मुँहसे वेश्यासुधार और "स्त्रियोंके अधिकार" के विरुद्ध बातें सुनकर किसे आश्चर्य नहीं होगा! डाक्टर कन्हैयालाल सन्न रह गए। प्रोफेसर साहबका भी यही हाल था। पर सबसे अधिक आश्चर्य स्वय मुझे हो रहा था। मैं अब तक काकाकी कुर्सीके पिछे खडी थी। काकाकी बातोंसे कौतूहल बढनेके कारण एक कुर्सी पकड़कर उनके बगलमें बैठ गई।

१०

डाक्टर कन्हैयालाल किशोरीमोहनकी तरह सहजमें झेंप जाने-वाले आदमी नहीं थे। बोले—"तो आप क्या यह चाहते हैं कि स्त्रियाँ अनतकाल तक अज्ञताके अधकारमें डूबी रहें और अंध-भावसे पुरुषोंकी गुलामी करती रहें?"

काकाने चिढकर कहा—"पुरुषोंकी गुलामी! आप क्या यह समझते हैं कि हमारी अशिक्षिता स्त्रियाँ नासमझीके कारण पुरुषोंकी सेवामें लगी है? देश-भरमें यही भारी भ्रम फैला हुआ है। हम लोगोंको यह खबर नही है कि जानबूझकर, अपने हृदयके अपरिमित स्नेहकी अविरल धारा-को बद्ध न रख सकनेके कारण, हमारी स्त्रियाँ अपनी इच्छासे अपनेको बधनमें जकडकर गीताके निष्काम धर्मका पालन कर रही हैं। पुरुषोंका ख्याल है कि स्त्रियाँ उनके दबावसे दबी हुई हैं। यह बात किसीके ध्यान-में नहीं आ रही है कि अगर स्त्रियाँ इस बधनसे मुक्त होना चाहें तो ससारकी कोई भी शक्ति उन्हें रोक नहीं सकती। पुरुषकी तुच्छ शक्तिका स्त्रियाँ सदा मन-ही-मन परिहास किया करती हैं।"

अपनी तीव्रतासे डाक्टर साहबकी वाक्-शक्ति को प्रतिहत करके काका कुछ देर तक आँखें फाड-फाडकर शून्य दृष्टिसे ताकते रहे। हम

लोग सब भयभीत होकर स्तब्ध भावसे बैठे रहे। कुछ देर तक चुप रहकर काका फिर बोले—" स्त्री–शिक्षा ! स्त्री–शिक्षा ! चारों ओरसे आजकल यही आवाज़ सुनाई देती है। पर स्त्री–शिक्षा क्या केवल युनिवर्सिटी और राजनीतिक क्षेत्रमें ही फलित होती है ? स्त्रियोंकी आत्माओंमें स्थित उन्नत वृत्तियोंको सुसंस्कृत करनेसे ही उन्हें उपयुक्त शिक्षा प्राप्त हो सकती है। जिस नई राष्ट्रीय शिक्षाकी कल्पना मैं कर रहा हूँ उसमें ' स्त्रियोंके अधिकार ' का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। स्त्रियोंके अधिकार भगवान्‌ने जन्मसे ही उन्हें दिए है। उन्हें कोई छीन नहीं सकता। वोटके अधिकारी होने, कौन्सिलोंमें प्रवेश करने, ' बार–प्रेक्टिस' करने और ऑनेररी मैजिस्ट्रेट होनेसे ही कुछ उनकी उन्नति नहीं हो जाती।"

कन्हैयालाल इसके उत्तरमें कुछ बोलना चाहते थे। काकाने उन्हें रोककर शात स्वरमें कहा—" मारिए गोली ! इन सब बातोंमें क्या रक्खा है ! इस प्रकारके विवादोंका अत नहीं होता। इधर कुछ दिनोंसे मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। पेटमें दर्द हुआ करता है, सिर भारी रहता है, तमाम बदनमें सुस्ती छाई रहती है, हर वक्त लेटे रहनेकी इच्छा होती है, किसी कामको जी नहीं करता। आप क्या इसका कोई कारण बतला सकते हैं ?"

विषयके परिवर्तनसे कन्हैयालालने अपनेको अपमानित हुआ समझा, यह बात मैं स्पष्ट देख रही थी। फिर भी गुस्सेको पीकर यथासभव शात होकर बोले—" कोई खास बीमारी आपको नहीं है। 'जेनेरल डेबीलीटी'के चिह्न दिखलाई देते हैं। मैं एक बार आपको अच्छी तरहसे ' साउड ' करूँगा। कब्जियतके लिये आप रातको ' लिक्विड पेरेफिन ' पिया कीजिए। कमज़ोरीके लिये आपको किसी टॉनिकका सेवन करना

होगा। पर सब टॉनिकोंसे वेहतर आजकल एक नई दवाका आविष्कार हुआ है। मनुष्य-शरीरके क्षीण होनेके सम्बधमें 'लेटेस्ट थिओरी' यह है कि जिन-जिन उपादानोंसे मानव-शरीर गठित होता है उनमें 'केल्सियम'का भाग विशेष रूपसे पाया जाता है। हड्डियाँ और पसलियाँ 'केल्सियम'से ही बनी हैं। इस केल्सियमके नष्ट होनेसे 'लॉस आफ इनर्जी'के चिह्न दिखलाई देते हैं। अक्सर देखा जाता है कि जिस आदमीके दॉत ख़राब होते हैं वह बीमार रहता है। अधिकाश डाक्टरोंका यह ख्याल है कि दॉत साफ न करनेसे दाँत ख़राब होते हैं और उनकी ख़राबीसे आदमी बीमार हो जाता है। इसलिये दाँतोंकी सफाईपर आजकल बहुत जोर दिया जाता है। पर मुझे यह बात बिलकुल गलत जान पडती है। असलमें दॉत साफ न करनेसे दॉत ख़राब नहीं होते बल्कि केल्सियमका सार-भाग नष्ट होनेसे ही वे ख़राब होते हैं। मैंने बहुतसे ऐसे लोगोंको देखा है जो रोज़-बरोज़ दॉत साफ करते हैं, टुथ-पेस्ट, टुथ पाउडार, नमक और तेलका लेप काममें लाते हैं, कभी पान नहीं चबाते, पर फिर भी उनके दाँत ख़राब रहते हैं। दॉतोंकी ख़राबीसे आदमी बीमार नहीं होता, पर दाँतोंकी ख़राबी बीमारीका एक लक्षण है। इस कारण 'केल्सियम'से प्रस्तुत किया गया एक नया रसायन आजकल शरीरकी दुर्बलताके लिये दिया जाने लगा है। इसका नाम है 'ट्राइकेलसीन'। मैं आपको इसीके सेवनका उपदेश दूँगा। भारतवर्षमें अभी इस दवाका विशेष प्रचार नहीं हुआ है, पर मैं इसकी परीक्षा कर चुका हूं।"

काकाने उल्लसित होकर कहा—"इस थिओरीकी युक्ति मुझे जँचती है। यह बात बिलकुल नई और दिलचस्प है। 'रिकाल्सिफिकेशन' का ज़िक्र इधर मैंने राजूके मुँहसे भी सुना था, पर उसे इस सबधमें अनाड़ी

समझकर मैंने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया। मैं अवश्य 'ट्राइकल-सीन' का सेवन करूँगा।"

उत्सुकतापूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर ताककर डाक्टर साहब बोले—"अवश्य कीजिएगा। और केवल आप ही नहीं, (मेरी ओर इशारा करके) आपको भी इसका सेवन कराइए। इनका चेहरा बहुत जर्द दिखलाई देता है। इनका टेंपरेचर नॉर्मल रहता है या नहीं, यह बात माळूम करनी होगी। एक हफ्ते तक दिनमें तीन बार इनका टेंपरेचर जब लिया जाय तब माळूम पड़े। पहलेसे ही सावधान रहना ठीक होता है। इस उम्रमें स्त्रियोंको अक्सर 'टी बी' हो जाया करता है।"

चौंककर काकाने कहा—"ऐं! 'टी बी'! यह आप क्या कहते हैं!"

डाक्टर साहब मुस्कुराए। बोले—"अभी घबरानेकी कोई बात नहीं है। इन्हें शायद 'टी बी' होगा भी नहीं। पर सावधान रहनेमें कोई हानि नहीं है।"

"आपका क्या यह ख्याल है कि इसमें 'टी बी' की 'टेंडेंसी' पाई जाती है!"

"'टेंडेंसी' तो अवश्य है। पर 'ग्लेंड' अभी उपजे या नहीं, यह बिना देखे नहीं कहा जा सकता।"

मैं साफ देख रही थी कि काकाका चेहरा स्याह होता जाता था। इस पापिनीको वह प्राणोंसे भी अधिक चाहते थे। अनिश्चित आशकासे वह घबरा उठे। पर मेरा हृदय आनंदकी पुलकित धारामें हिलोरें ले रहा था। डाक्टर साहब नाना कर्मों और नाना चिंताओंमें व्यस्त रहनेपर भी मेरे प्रति उदासीन नहीं हैं, इस विचारसे मैं फूली नहीं समाती थी।

मुझे 'टी. बी' हो गया है या लकवा मार गया है, इस बातकी मुझे तनिक भी चिंता नहीं थी ।

इस समय तक प्रोफेसर साहबकी घिग्घी बँधी हुई थी। अकस्मात् वह बोले—"पर साहब, देखेगा कौन? इस कठिन रोगकी जाँचके संबधमें लेडी डाक्टरोंका विश्वास नहीं किया जा सकता। डाक्टर कन्हैयालाल इस संबधमें 'स्पेशियालिस्ट' हैं, संदेह नहीं। पर मर्दोंका स्त्रियोंको 'साउंड' करना भद्दा जान पड़ता है और समाजकी आँखोंमें खटकता है। मैं तो कोई हानि नहीं देखता, पर—"

काकाने एक बार मेरी ओर ताका और इस बातका बिना कोई उत्तर दिए चुप हो रहे।

११

मेरी रग-रग में नशा समा गया था। डाक्टर साहब जब अपने मित्रके साथ वापस चले गए तो मैं अलसाती, झूमती और बल खाती हुई अपने कमरेमें जाकर पलँगपर लेट गई। आज न जाने कितने दिनोंके बाद मेरे हृदयमें चैतन्य और मूर्च्छाकी पारस्परिक प्रीति और आँखमिचौनीका खेल चलने लगा था! डाक्टर साहबका वह बुद्धिसे प्रदीप्त, सौंदर्यसे उज्ज्वल, तेज-संपन्न मुखमंडल अपनी मोहनी स्मृतिसे बार-बार मुझे जीवित और मृत कर रहा था। कुसुम-कोमल, रेशम-सज्जित, एसेंस-सुवासित, विहग-पक्षोंसे निर्मित शय्याकी सुकुमार कोमलतामें मैं मक्खनकी तरह मिलकर पिघली जाती थी। दूसरे कमरेसे पियानोकी उत्सव-मय ध्वनि कर्ण-कुहरोंसे अंतस्तलमें प्रवेश करके लंदन और पेरिसके उल्लसित जीवनकी चंचलतासे हृदयको तरंगित कर रही थी। राजू शायद पासमें कोई काम न होनेसे

बेना किसी उद्देश्यके निर्विकार भावसे एक विलायती रागिणी बजा रहा था। निर्विकार भावसे इसलिये कहती हूँ कि उसकी प्रकृतिका व्यक्ति विलायती सगीतके उल्लास-विह्वल रससे कभी उत्तेजित नहीं हो सकता। विजन विश्वके निमीपिकामय विपादसे ही उसे प्रेरणा मिला करती थी। पर मादमाजेल पावलोवनाके शिष्यत्वमें हम दोनोंने विलायती संगीतकी शिक्षा भी पाई थी और रजन इस विद्यामें भी मुझसे बहुत आगे बढ़ गया था। इस कारण कभी-कभी वह बेठोफेनके जगत्-प्रसिद्ध 'सोनाटा' बजा लिया करता था। पर उसने मुझसे कहा था कि पाश्चात्य सगीतसे उसकी आत्मा तृप्त नहीं होती।

और मैं? मैं रह-रहकर इस आनदमय सगीतकी तरगोंसे कपित होती जाती थी। कॉलेजकी लडकियोंके गाभीर्य-हीन हास-विलाससे उकताकर, घरके विपादमय और वैचित्र्यहीन जीवनसे घबराकर मैं इस अनत सृष्टिमें अपनेको अकेली, असहाय, नि सगिनी और उपेक्षिता समझ रही थी। आज राजूका यह सगीत मुझसे कहने लगा—"इस विपुल जीवनमें तुम्हारी भी सार्थकता है—तुम भी एक दिन ससार-भरके मुग्ध पुजारियोंकी पूजा पाकर नारीका सौन्दर्य-विभासित यौवनोन्मत्त जीवन सार्थक करोगी। एक दिन आवेगा जब समस्त ससारका आनन्दमय उत्सव केवल तुम्हारे ही चरणोंमें हृदयाजलि देनेके लिये मनाया जायगा।"

कहाँ गई 'टी बी' की चिन्ता, कहाँ गया 'केल्सियम' पर डाक्टर साहबका मतव्य! अनत जीवन और अनत यौवनके भावसे मेरी नाड़ियाँ स्फुरित होने लगीं। मैं जाग्रतावस्थामें ही स्वप्न देखने लगी। मैं अनुभव करने लगी कि डाक्टर साहब मुझे लेकर देश-विदेश भ्रमण करने निकले हैं। असख्य पुरुषोंको रूप-मुग्ध करके मैं उनकी बातोंसे, ऑखोंसे, इगितोंसे उनकी प्रशसा लूट रही हूँ, पर प्यार सिर्फ डाक्टर साहबको ही

कर रही हूँ । डाक्टर साहब मेरे ही लिये डाक्टरी कर रहे हैं, मेरी ही चिन्तामें दिन विता रहे हैं, मेरी ही रक्षाका व्रत उन्होंने लिया है । मुझे ससारमें किसीका डर नहीं है, क्योंकि मैं एक तेजस्वी पुरुषकी छत्रच्छायामें महारानीकी तरह आसीन हूँ ।

यह जाग्रत स्वप्न देखते-देखते जब मैं मोहाच्छन्न हो गई तो अवसाद और क्लान्तिसे शक्तिहीन होकर यह कल्पना करने लगी कि यदि सचमुच मुझे कोई रोग हो जाता और डाक्टर कन्हैयालाल मेरा इलाज करते तो कैसा अच्छा होता !

फिर सोचने लगी—" अच्छा, सचमुच क्या मेरा रूप पुरुषोंको मोहित करनेके योग्य है ? क्या कन्हैयालाल सचमुच मुझे चाहते हैं ? क्या मेरा सुस्त चेहरा देखकर सचमुच उन्हें दुःख हुआ था और उनके कलेजेमें चोट पहुँची थी ? "

इसके वाद फिर मेरा मन उनका चित्र अकित करके उनकी रूप-सुधा, उनकी सरस ऑखोंके मद-विह्वल भावकी मधुरता पान करने लगा। इसके साथ ही प्रोफेसर किशोरीमोहनकी मूर्त्ति भी मेरे स्मृति-पटलमें उदित हो रही थी । मैंने सोचा—" दोनोंमेंसे अधिक रूपवान् कौन है ? कन्हैयालाल ही मुझे जँचते है । किशोरीमोहन भी देखनेमें सुदर हैं, इसमें सदेह नहीं । पर डाक्टर कन्हैयालालके मुखका-सा तेज उनमें कहाँ पाया जाता है ! किशोरीमोहन मेरे रूपके भक्त हैं—ऐसे भक्तोंकी मुझे आवश्यकता है । पर डाक्टर साहबको ही मैं अपना हृदय अर्पित करूँगी।"

भगवानकी कृपासे पुरुप अपनी पूरी शक्तिसे परिचित नहीं है । स्त्री-हृदयको वह कैसे भयकर तूफानके ताडनसे आदोलित कर सकता है, इस वातसे वह अनभिज्ञ है । अच्छा ही है । नहीं तो संसार-भरमें आज स्त्री-जातिपर जैसा निकृष्ट अत्याचार हो रहा है उसकी मात्रा दूनी वढ

जाती। पुरुषको इस बातपर विश्वास नहीं है कि नारीके हृदयके ऊपर उसकी शक्ति कोई काम कर सकती है। इस कारण अपनेको नारी-हृदयका अनधिकारी समझकर वह उसकी पार्थिव सत्ताके ऊपर अपना सम्पूर्ण बल आरोपित करता है। हाय मूढ़! यदि नारीका हृदय तुम्हारे पुरुषत्वकी शक्तिसे चकनाचूर न हुआ होता, तो विश्वकी प्रबलतम शक्तिको काममें लानेपर भी तुम स्त्री-जातिको दासत्वकी शृंखलामें न बाँध सकते। अपने हृदयकी विवशताके कारण वह स्वयं लाचार है। अन्यथा उसकी प्रलयकरी काली-मूर्त्तिकी विकरालता और रण-चंडीके समान उन्मत्त भीषणतासे सारी सृष्टिका ही लोप कभी हो गया होता।

१२

पर यह सब होनेपर भी कौन मूर्ख इस बातका प्रचार कर गया है कि स्त्री-जाति वीर पुरुषको भजती है? पुरुषकी मनोहरतासे स्त्री मन्त्र-विह्वल-सी रहती है। उसका देव-विनिंदक, मदन-मोहन रूप देखकर वह मोहाच्छन्न हो जाती है, और यह बात सोचनेका अवकाश ही उसे नहीं मिलता कि उसका मनोवांछित पुरुष वीर है या नपुंसक। जिस समय ग्रीस देशमें वीरताकी सच्ची पूजा होती थी उस समय भी विश्व-विमोहिनी हेलेनने अपने ऊपर मुग्ध समस्त वीरोंकी अवज्ञा करके, नपुंसक पैरिसके रूपपर मुग्ध होकर अपने स्वामीको छोड़कर ग्रीक-जातिका विनाश घटित किया था। किंग लियरकी पितृ-द्वेषिणी लड़कियोंने जिस व्यक्तिको अपना हृदय समर्पित किया था उसकी नीचतासे सभी परिचित हैं। नैपोलियनने जब स्पेनको अपने अधिकारमें करनेकी चेष्टा की थी तो वहाँकी रानी उस समय सारा राज्य एक अत्यंत तुच्छ, छैले-छबीले, चौंके और रसिया 'सिपाही'को लुटानेमें लगी थी। अपने इस प्रेमिकको सेनासे

वरी करके उसने अपने राज-काजमें रख लिया था। फ्रासके 'लुई' वशकी रानियोंकी कहानी सभीको विदित है। और तो क्या, हमारे देशकी तापसी शकुतला दुष्यतके वीरत्वपर मुग्ध न होकर उनका रूप देखकर ही रीझ गई थी।

असल बात यह है कि रूपवान् पुरुषको देखकर नारी उसके प्रति कभी उदासीन नहीं रह सकती। मै मानती हूँ कि उदासीन रहना अपने वशकी बात नहीं है। पर अपनी दुर्बलताके विरुद्ध हठ करनेके लिये स्त्रीके हृदयमें इच्छा ही नहीं उत्पन्न होती। पुरुषमें यह बात नहीं है। जो यथार्थ पुरुष होता है वह पहले तो अपने उन्नत आदर्शके प्रतिकूल स्त्री को उसके मुखके भावसे ही पहचानकर दूसरी बार उसके प्रति ऑख उठाकर भी नहीं देखता, फिर चाहे वह अप्सरासे भी अधिक रूपवती क्यों न हो। यदि किसी कारणसे वह ऐसी स्त्रीके रूपपर मुग्ध-हो भी जाय, और मनको न रोक सके तो आतरिक इच्छासे मनके विरुद्ध सग्राम करता है। पुरुषकी इस प्रवृत्तिका परिचय मुझे अपने भाईके ही चरित्र-से मिला है। राजूको अपने अल्प जीवनमें अपने आदर्शके अनुकूल कोई स्त्री मिली या नहीं, मैं कह नहीं सकती। पर मेरी सहपाठिनी और संगिनी जिन-जिन स्त्रियोंसे उसका परिचय हुआ उनके लिये उसके उन्नत हृदयमें आतरिक घृणा उमडा करती थी, यह मैं अपनी ऑखोंसे देख चुकी हूँ।

ससार-भरमें जितने भी महत्त्वपूर्ण धार्मिक आदोलनोंसे मानव-जाति जागरित हुई है उन सबके मूलमें नारीके विरुद्ध पुरुषका विद्रोह है। चिरकालसे पुरुष नारीकी भावनाको हृदयसे उखाड़कर महत् तत्त्वमें लीन होनेकी चेष्टा करता आया है। नारीके त्यागसे ही उसके धर्मका आरभ होता है। पर हाय हतभागिनी नारी! पुरुषकी चिंता और पतिकी

भक्ति ही तुम्हारा मूल धर्म है। पतिको त्यागनेसे इस विपुल जगत्में तुम्हारे लिये धर्माधर्म कुछ भी नहीं रह जाता। केवल शून्य ही शेष रहता है। पुरुषके विना तुम्हारी सत्ता ही नहीं है। पुरुष तुम्हारे फंदेसे बचकर निकल भागनेकी चेष्टामें है, पर तुम नाना चेष्टाओंमें उसे रिझाकर अपने प्रेमाचलसे जकड़नेमें लगी हो। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि तुम्हें अपने अबलापनपर गर्व करनेकी शिक्षा दी गई है, और इस कारण तुम्हारा हृदय भी दुर्बल हो गया है। जब तक नारी-जाति अपने करालिनी कालिकाके स्वरूपसे परिचित नहीं होगी तब तक उसका शरीर, उसका हृदय और उसकी आत्मा नीचता, दासत्व और पापपकसे पतित होती जायगी।

हाय! आज नारी-जातिके प्रति मेरे हृदयमें क्यों इतना भयकर आक्रोश वर्तमान है! न मालूम क्यों, मेरे हृदयमें यह विश्वास बद्धमूल हो गया है कि स्त्रीके सतीत्वकी कल्पना ही बिलकुल मिथ्या है। ससारमें कोई भी स्त्री सती हो सकती है, इस बातपर मुझे विश्वास ही नहीं होता। पुरुष-पाठक मेरी इस उक्तिसे भडक उठेंगे, क्योंकि स्त्री-हृदयमें स्वजातिके प्रति जो ईर्ष्या वर्त्तमान रहती है उससे वे परिचित नहीं रहते। पर पाठिकाएँ मेरे अतस्तलकी क्रोधाग्नि और प्रतिहिंसाके स्वरूपसे परिचित होकर अवश्य ही इस हतभागिनीके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करेंगी, मुझे यह पूरी आशा है।

हे मेरी सती-साध्वी माताओ और बहनो! अपने स्वर्गीय शाति-रसकी स्निग्धता बरसाकर इस पापिनीकी ज्वालाको शात करो! अपने हृदयके सहज स्नेहसे आशीर्वाद देकर इस हतभागिनीको क्षमा करो। घोर पाप और असहनीय दु खसे पीड़ित होनेके कारण मेरा हृदय आज गहन

सशय और अविश्वासके तिमिरसे आच्छन्न है। अपनी आत्माके उज्ज्वल, निष्कलुप, शुभ्र प्रकाशसे मेरा अत:करण प्रभासित कर दो।

पाठक उकताकर कहेंगे कि इस कहानीमें कैफियत अधिक है और तथ्य कम। कैफियतके विना मेरी कहानीका कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता, यह बात मैं लोगोंको कैसे समझाऊँ। कैफियत ही मेरी कहानी है और कहानी कैफियत।

१३

एक दिन काकाने किसी कारणसे अपने मित्रोंको सहभोजका निमत्रण दिया। सबके पास निमत्रणपत्र भेजे गए, पर पूर्वोल्लिखित दो मित्रोको वह भूल गए। बहुत सभव है, जानबूझकर उनके पास उन्होने न्योता नहीं भेजा। पर मैं न रह सकी। मैंने काकाको याद दिलाई। कहा—"डाक्टर कन्हैयालाल और प्रोफेसर किशोरीमोहनके लिये न्योता नहीं भेजा गया। उन लोगोंको तुम क्यों भूल जाते हो?" मेरे भीतरका क्रोध बहुत दबाने पर भी शायद बाहरको कुछ फूट निकला था। काकाने तीव्र बुद्धिमत्तासे पूर्ण अपनी दो उज्ज्वल आँखोंसे स्नेहकी स्निग्ध धारा बरसाकर मेरी ओर ताका। बोले—"ओह! भूल हो गई है। तुमने खूब याद दिलाई। अभी भेजे देता हूँ।" मेरे भावी सर्वनाशकी आशका करते हुए भी वह मेरा अनुरोध न टाल सके।

भोजके दिन नियत समयपर एक-एक दो-दो करके मित्रगण पधारने लगे। मैं बडी उत्सुकतासे डाक्टर साहब और प्रोफेसर साहबकी वाट जोह रही थी। अतको अपना सजीला और गठीला बदन, तमतमाता हुआ चेहरा, चमकती हुई आँखें और रौबदार मूँछें लेकर डाक्टर साहब किशोरीमोहनके साथ आ उपस्थित हुए। युगल मित्रोंकी

यह जोड़ी अविच्छेद्य थी। जिस प्रकार नैय्यायिकोंने यह स्वयसिद्धि प्रचारित की है कि धूँएको देखते ही आगके अस्तित्वकी कल्पना कर लेनी चाहिए, उसी प्रकार इन दो मित्रोंमेंसे एकको देखते ही यह कहा जा सकता था कि दूसरे महाशय भी अवश्य ही इनके साथ होंगे। आज प्रोफेसर किशोरीमोहनके मुखपर भी विशेष तेज झलक रहा था। दोनों मित्र अश्विनीकुमारोंकी तरह अपनी प्रभा और नवीनतासे स्वय दीप्त होकर सारी सभाको उज्ज्वल कर रहे थे। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि ससारमें जितने भी उत्सव नित्यप्रति मनाए जा रहे हैं वे सब केवल इन्हीं दो मित्रोंके शुभागमनके लिये।

सारी सभाकी आँखें इसी नवीन जोडीकी ओर लगी हुई थीं। दोनोंके मुखमडलके भावोंमें, पहनावेमें, चालकी गतिमें और बोलनेमें एक ऐसी अद्भुत मौलिकता थी जिसकी उपेक्षा किसी तरह नहीं की जा सकती थी। महिलाओंकी मुग्धताके सबधमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है, परन्तु पुरुष भी उनकी विशेषतासे विमूढ हो रहे थे।

दोनोंको मेरे पास बिठाकर काकाने व्यंग-भरी मुसकानके साथ कहा—"स्मृति-शक्तिकी दुर्बलताके कारण मैं तो आप लोगोंको न्योता देना भूल ही गया था। पर लज्जा हमारी बड़ी समझदार लड़की है। उसीके याद दिलानेपर मैंने आप लोगोंको बुलाया है, इसलिये उसीके साथ आप लोगोंको बैठना होगा।" यह कहकर उसी चिर-परिचित व्यगकी मुस्कराहटसे मेरी ओर ताककर मेरा मर्म विद्ध करके वह चले गए और अन्यान्य मित्रोंका अभिवादन करने लगे। लाज और सकोचकी वेदनासे मेरे सारे शरीरमें काँटे चुभनेकी सुरसुराहट होने लगी। पर वे दोनों विशेष रूपसे उल्लसित हो उठे।

प्रथम परिचयकी लज्जा कैसी भयकर होती है, पाठिकाओंको यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। मेरा मुँह शायद बहुत लाल हो आया था और मै पसीनेसे तर हो गई थी। डाक्टर कन्हैयालाल अपने सुदृढ, सुदर, पौरुष कठसे बोले—"आपका नाम लज्जा रखकर आपके पिताजीने अपनी सुबुद्धिका ही परिचय दिया है। वैसे तो स्त्री-जाति लज्जाके लिये प्रसिद्ध ही है, पर सुशिक्षिता महिलाएँ भी इतनी लज्जावती हो सकती है, इसकी मुझे खबर नहीं थी।"

डाक्टर साहब आज प्रथम बार मेरे साथ बोले थे। अव्यक्त पुलकके आनदसे मेरे रोंएँ खडे हो गए। सकोचको यथाशक्ति दबानेकी चेष्टा करके मधुर लाजकी विलासितापूर्ण हँसी हँसकर मैं बोली—"तो क्या आप लज्जाको एक दुर्गुण समझते हैं?"

यहाँपर प्रोफेसर किशोरीमोहन बोल उठे—"अगर नहीं समझते तो समझना चाहिए। मै किसी तरह लज्जाको गुण नहीं बतला सकता। हमारे देशकी स्त्रियाँ इतने नीचे इसीलिये गिरी हैं कि उनमें बात-बातमें जडता और सकोच पाया जाता है। इस घृणित सकोचके कारण ही वे जनतामें अपनी सत्ता प्रतिष्ठित करनेमें असमर्थ हैं। इस सकोचके कारण ही वे पर्देमें सडकर पुरुषोंकी गुलाम बनी हुई हैं।"

डाक्टर कन्हैयालालने कहा—"माफ कीजिए, प्रोफेसर साहब! मैं आपकी बातसे सहमत नहीं हूँ। लज्जा ही स्त्री-जातिका एकमात्र ऐसा गुण है जिसने पुरुषोंको बाँध रक्खा है। लज्जा बुरी नहीं है, पर आवश्यकतासे अधिक मात्रामें होनेसे ही इससे नुक़सान पहुँचता है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'—वाली चाणक्य-नीति मुझे बार-बार याद आती है।"

प्रथम लज्जाका बाँध टूटनेसे मैंने निर्लज्ज होकर मधुर मुस्कराहटके साथ नयन-बाणोंसे दोनों मित्रोंको वेधते हुए डाक्टर साहबसे कहा—

"कितनी लज्जा आवश्यक होती है, और कितनी आवश्यकतासे अधिक, इस बातका ठीक ठीक हिसाब रखकर कैसे चला जा सकता है? लज्जाको कम करना या बढ़ाना क्या अपने वशकी बात है? आप तो डाक्टर हैं, आप तो जानते हैं कि स्नायुके विशेष विकारसे ही मनुष्यको लज्जा आ घेरती है। जिस व्यक्तिका स्नायु-चक्र अधिक सुकुमार होता है, वह लाख लज्जाको दबानेकी चेष्टा करने पर भी उसकी ललाईसे रँग जाता है। स्त्रियोंका स्नायु-चक्र सबसे अधिक सुकुमार होता है, इसलिये वे किसी प्रकार भी लज्जाको त्याग नहीं सकतीं। हाँ, अगर आप स्नायु-चक्रको अधिक पुष्ट और दृढ़ बनानेकी कोई दवा 'प्रेसक्राइब' कर सकते हैं तो दूसरी बात है।"

मेरी अंतिम बातसे प्रोफेसर साहब ठठाकर हँस पड़े और डाक्टर कन्हैयालाल शायद आनंदकी उत्तेजनाके कारण तमतमा उठे।

प्रोफेसर साहब बोले—"खूब! यह आपने खूब कहा! लज्जा जब एक स्नायविक विकार है, तो इसका डाक्टरी इलाज अवश्य होना चाहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि डाक्टर साहब इसकी दवा जानते हैं। पर इस मर्जके लिये कोई ऐसी दवा 'प्रेसक्राइब' नहीं की जा सकती जो चखने लायक हो। आपको शायद मालूम होगा कि आजकल विलायतमें हिप्नोटिजम और मेस्मेरिजम द्वारा भी कई रोगोंका इलाज किया जा रहा है। डाक्टर साहब इन विद्याओंमें भी पारंगत हैं। आप बेमालूम कई रोगोंको दूर कर देते हैं। बहुत संभव है आपके ऊपर भी इन्होंने हिप्नोटिज्मका उपयोग कर लिया हो, नहीं किया होगा तो शीघ्र ही करेंगे।"

प्रोफेसर साहब शायद समझ गए थे कि डाक्टर साहबकी बातोंके जादूसे मेरी लज्जा तिरोहित हो गई है, इसी लिये व्यंगकी यह वर्षा कर रहे

थे । पर इसमें सदेह नहीं कि डाक्टर साहबकी आँखोंमें और उनकी वातोंमें एक ऐसी विशेपता थी, जो मनुष्यको वेवस मोह लेती थी। इसलिये नहीं कि उन्होंने हिप्नोटिज़मकी तुच्छ विद्याका अभ्यास किया हो। उनका यह जादू उनकी प्रकृतिके साथ जडित था ।

१४

दो पुरुप-प्रशसकोंकी मुग्ध दृष्टिसे पूजित होकर मैं अपनेको सारे ससारकी महारानी समझ रही थी । कोई दैन्य, कोई हीनता और कोई तुच्छता मैंने अपने भीतर नहीं पाई । मैं अच्छी तरह समझ रही थी कि हमारे वीचमें जो वातें इस समय हो रही हैं, वे अत्यत तुच्छ और नाशवान् हैं । पर हमारे बीचसे होकर चुवक-शक्तिकी जो अदृश्य धाराएँ तरगित हो रही है वे चिरस्थायी और अत्यत महत्त्वपूर्ण है ।

डाक्टर साहब बोले—" हिप्नोटिज़म, मेस्मेरिज़म, मेग्नेटिज़म, ये सव विद्याएँ कोई विद्याएँ नहीं है । इसमें सदेह नहीं कि विलायतमें ' मेडिकल सायस ' की तरह ये विद्याएँ भी पढाई और प्रयोगोंद्वारा सिखाई जाती है, पर मनुष्यका यह ज्ञानाभिमान कैसा तुच्छ है ! केवल पुस्तक और ' लेबोरेटरी ' के भीतर वद ज्ञान ही उसके लिये सब कुछ है । आत्मानुभवको वह कोई महत्त्व ही नहीं देता। मनुष्यकी शक्तिको जड बनाकर उसे वेवस अपने इशारोंपर नचाना, प्रकृतिको अपने वशमें कर लेना, क्या एक साधारण खेल है कि जो पुस्तकगत सिद्धातोंको रटनेसे ही अभ्यस्त हो सके ? हमारे देहाती भाई मुरादावाद या मथुराके प्रेससे छपी हुई इद्रजाल और तत्र-मत्रकी पुस्तकें पढकर ' हिप्नोटिस्ट ' बनना चाहते है। वर्त्तमान 'हिप्नोटिक सायस' की विलायती पुस्तकोंकी दौड इद्रजालकी उन पुस्तकोंसे अधिक है, मैं इस वातपर विश्वास नहीं करता । "

प्रोफेसर किशोरीमोहन कुछ खीझकर बोले—“ तो क्या आप ‘ हिप्नो-टिज़म’ को केवल एक शब्द-जाल समझते हैं ? ”

“ हरगिज़ नहीं। हिप्नोटिज़म शब्द जब कोषमें है, तब उसका कुछ–न–कुछ अर्थ अवश्य होना चाहिए। मैं ‘ हिप्नोटिज़म’ को कोई बाहरी क्रिया नहीं समझता जो पुस्तकोंके पढ़नेसे सीखी जा सके। मनुष्यकी भीतरी वृत्तियोंके विशेप विकाससे ही उसका सबंध है। महात्मा बुद्धने समस्त मानव-जातिको किस विद्याद्वारा मोहित किया था ? उन्होंने मद्रास प्रांतके अडयार पब्लिशिंग हाउससे प्रकाशित वशीकरण योगकी पुस्तकोंका अध्ययन किया था या ट्रिप्लिकेनके पुस्तक-प्रकाशकोंका मेस्मेरिज़म सीखा था ? ”

मैं स्पष्ट देख रही थी कि डाक्टर कन्हैयालाल आज प्रारभसे ही प्रोफेसर साहबको परास्त करनेकी चेष्टामें थे और प्रोफेसर साहब भी बीच–बीचमे अपनी व्यगोक्तियोंसे उन्हे उत्तेजित करनेमें लगे थे। इसका कारण क्या था ? यह क्या प्रतियोगिताका विद्वेप था ? सभव है। कुछ भी हो, इससे मेरा आत्माभिमान अधिकाधिक बढ़ता जाता था।

प्रोफेसर किशोरीमोहन बोले—“ आपके विचारमें क्या महात्मा बुद्ध-के जमानेमें ‘ हिप्नोटिज़म’ का प्रचार नहीं था ? यह आप कैसे कह सकते है ? ‘ हिप्नोटिज़म’ नहीं तो हठयोग, राजयोग आदि नाना योग तो उस समय वर्त्तमान थे। ये हिप्नोटिज़मके ही अन्य रूप है। कौन कह सकता है कि बुद्धने इन योगोंका अनुशीलन नहीं किया था ? ”

प्रोफ़ेसर साहबकी यह उक्ति शायद असत हास्यजनक थी। इसलिये डाक्टर साहब ठठाकर हस पड़े। डाक्टर साहबकी विजय अब निर्विवाद थी। उनकी विकट हँसीसे किशोरीमोहनके चेहरेकी रंगत उड़ गई। वह परास्त होकर कभी कन्हैयालालका और कभी मेरा मुँह ताकने रह गए।

डाक्टर कन्हैयालालने प्रोफेसर साहबके इस हास्यास्पद तर्कका उत्तर देना ही उचित न समझा। वह अपनी ही धुनमें कहते चले गए—"रमणी अपने रूपकी मोहनीसे सारे जगत्को अपने इशारोंपर नचा रही है। इस रूपके 'मेस्मेरिज़म'से पागल होकर पुरुष-समाज इस बातका ख्याल नहीं कर रहा है कि इस प्रबल आकर्षणके मूलमें स्त्रीका हृदय है जो चुंबक-शक्तिसे पूर्ण लोहेके चट्टानसे भी कठिन है। इस भीषण चट्टानकी ओर बेवस आकर्षित होकर उससे टकराकर पुरुष-हृदय चकनाचूर हो जानेकी इच्छा रखता है। स्त्रीके रूप और हृदयके इस आकर्षणका कारण क्या आप यह बतला सकते हैं कि उसने भी किसी योग-शास्त्रका अध्ययन या अभ्यास किया है?"

शैतानकी तरह अव्यक्त हँसी हँसकर डाक्टर कन्हैयालालने अपनी बात समाप्त की।

प्रोफेसर साहबको निरुत्तर देखकर मैं अपने शरीर और मुखके सुंदर गठनका विलास पूर्ण मात्रामें व्यक्त करके डाक्टर कन्हैयालालसे बोली—"तो क्या आपका हृदय भी स्त्री-हृदयके चुंबक-चट्टानसे टकराकर चकनाचूर होनेको है?"

यह प्रश्न करते ही निरतिशय लज्जाके कारण मेरा मुँह खूनसे रँग गया और आँखें नीचेकी तरफ झुक गईं। प्रोफेसर साहब इतने जोरसे हँस पड़े कि सारी सभाकी उत्सुक आँखें हमारी ओर केंद्रित हो गईं। अपनी निर्लज्ज मूर्खतापर मैं बेतरह पछताने लगी। मेरा दिल जोरोंसे धड़कने लगा और हाथ-पाँव बेवस काँपने लगे। किसी पुरुषसे ऐसा प्रश्न कभी कर सकूँगी, यह बात मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोची थी।

पर डाक्टर कन्हैयालालने स्थिर होकर मंद-मंद मुसकानसे और तीखी नजरसे मेरी ओर ताका। उनकी उस तीक्ष्ण दृष्टिकी आँचसे मेरा हृदय

पुलकित होकर पिघलने लगा। उनकी आँखोंके विद्युत्-वर्षणसे मेरी आँखें चौंधिया गईं और मैं इच्छा होने पर भी एकटक उनकी ओर न ताक सकी। अधखुली आँखोंसे कभी ऊपरको उनकी ओर ताकती थी और फिर उसी दम नीचेको नज़र फिरा लेती थी। मैं लज्जासे मिट्टीमें गडी जाती थी, पर फिर भी मन-ही-मन यह अनुभव कर रही थी कि मेरी आँखोंकी मोहिनी इस समय दूनी बढ गई है।

अपनी दृष्टिकी तीक्ष्ण धारसे मेरा हृदय चीरकर, उसमेंसे न मालूम क्या गुप्त रहस्य निकालकर डाक्टर साहबने स्थिर भावसे पूछा—" आप क्या सचमुच यह बात जानना चाहती हैं? "

इस समय भी उनकी आँखोंके कोनोंमें शैतानका वही निष्ठुर, अव्यक्त हास्य भरा था।

मैंने धीमे, काँपते हुए स्वरमे कहा—" यह आपका कैसा अनोखा प्रश्न है। "

डाक्टर साहब बोले—" आपका प्रश्न अनोखा था या मेरा यह प्रश्न अनोखा है? खैर।—

फिर वही क्रूर, अव्यक्त, मद हास्य। मैं अफीमके नशेसे झूमने लगी।

१५

भोज समाप्त होते ही मैं वहाँसे उठ गई और विना किसीसे कुछ कहे-सुने बाहर चली आई। मैं अच्छी तरह समझ रही थी कि मेरा यह आचरण अनुचित और शिष्टाचारके विरुद्ध है, पर एक ऐसी अप्रिय भावनासे मेरा हृदय आलोड़ित हो रहा था जिससे मैं मुक्ति पाना चाहती थी। प्रेम-संभाषणके प्रथम सूत्रपातसे ही मेरे हृद-

यमें प्रेम-जनित तृप्ति उत्पन्न होने लगी थी। अपनेको धिक्कारकर, निरपराध काकाको कोसकर मैं जी मसोसकर बाहर आई। बाहर राजू लीलाके साथ 'बेडमिंटन' खेल रहा था। भीतर बडे-बडे नेता आए हुए थे, प्रात-भरकी प्रसिद्ध महिलाऍं उपस्थित थीं, तरह-तरहकी दिलचस्प बातें छिड़ रही थीं, नए-नए और एक-से-एक बढकर फैशनोंकी प्रतियोगिता हो रही थी, पर राजू इन सब बातोंके प्रति बिलकुल उदासीन था। अर्थ और कामकी जलती हुई आगके बीचमें यह वैराग्यसे स्थिर मूर्त्तिमान धर्म न मालूम किस नक्षत्र-लोकसे आकर शात भावसे विराज रहा था।

लीलाके उल्लासकी किलकारियोंसे सारा वायुमडल गूँज रहा था और राजू बडे आनदसे उसके निष्पाप जीवनकी प्राकृतिक उमगका उपभोग कर रहा था। मुझे अपने इन दो भाई-बहनके ऊपर ईर्ष्या होने लगी। मैं एकटक दोनोंको ताकती रह गई। धीरे-धीरे मेरी आँखोंसे अकारण आँसू उमड आए। आँखें पोंछकर मैं उन दोनोंके पास आकर खडी हो गई।

लीला दौड़ती हुई मेरे पास आई और बडे स्नेहसे मुस्कुराती हुई बोली—"दीदी, पहला 'गेम' मैं हार गई हूँ, दूसरे 'गेम' में भी भैया ही अब तक आगे बढे हैं। मेरे बदले तुम खेल दो!" मैं अन्यमनस्क हो रही थी। चित्त चंचल था। पर लीलाका स्नेहानुरोध न टाल सकी। बोली—"अच्छा मैना, मैं खेल दूँगी।" उसके हाथसे रैकिट लेकर मैं खेलने लगी। राजू इस खेलमें बडा तेज था। इसलिये मैं भी हारती चली गई। मुझे भी हारते देखकर लीलाका मुँह फीका पड़ता जाता था। मैं मनमें कहने लगी—"हाय, प्यारी बहन! अभी तुम

संसार-चक्रसे परिचित नहीं हो । अभी तुमने अपना हृदय नहीं पहचाना है । एक दिन प्रकृतिकी विकट अग्नि-परीक्षामें तुम्हारा यह हृदय भी जलेगा, तब तुम्हें मालूम होगा कि सारे जीवनको आलस्यजनित आनदकी क्रीड़ामें वितानेकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंके लिये यह ससार नहीं है । जिन लड़कियोंको बचपनसे ही इस प्रकार जीवन बितानेकी शिक्षा दी जाती है, वे अतकाल तक जल-जलकर, घुल-घुलकर अपने दिन बिताती हैं । जलनेके सिवा उनके कपालमें और कुछ लिखा नहीं होता ।"

पर कर्म ? स्त्री क्या कर्म कर सकती है ! जब भगवानने लीलाको और मुझे अर्थ और कामसे पूर्ण, पार्थिव ऐश्वर्यसे सपन्न घरमें पैदा किया था, तो ऐसे घरमें क्या कर्म हमें करना था ? कौनसा कर्त्तव्य मै निभा सकती थी ? निर्धन घरोंकी स्त्रियोंका कर्त्तव्य तो प्रकृतिने जन्मसे ही निर्दिष्ट कर दिया है—भाई-बहन और बाल-बच्चोंकी देख-रेख करना, चूल्हा जलाना, खाना बनाना, कूटना, पीसना, बर्तन मॉजना, अतिथि-अभ्यागत, माता-पिता, सास ससुर पति और देवरोंकी सेवामें लगे रहना, इत्यादि सभी कर्मोंके भारसे वे दबी रहती है, और इसी प्रकारके नि स्वार्थ, निष्काम कर्ममें लगे रहनेमें ही उन्हें स्वर्गका आनद मिलता है, और, सभव है, स्वर्गका फल भी प्राप्त होता होगा । पर हम दो बहनोंको इन सब पुण्य कर्मोंमें निमग्न रहनेका सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सकता था ? नौकर-चाकर, दास-दासी, धाई, मिसरानी और बावर्चियोंसे सारा घर भरा था । जमीन परसे एक तिनका उठानेका सौभाग्य भी हमें प्राप्त नहीं होता था । ऐसी हालतमें आलस्य-विलास और सुख-स्वप्नोंमें डूबे रहनेके अतिरिक्त और क्या किया जा सकता था ? पर मैं अच्छी तरहसे जानती थी कि इस प्रकारके आलस्यजनित स्वप्नोंसे मेरा सारा जीवन मिट्टीमें मिला जा रहा है और इस कर्म-भूमिमें पैदा होने पर भी मै विकराल

शून्यका ही ग्रास बनी हुई हूँ। कर्ममें निमग्न रहनेकी आतरिक इच्छा होनेपर भी मैं लाचार थी। यदि मै विवाहिता होती, तो मैं अपने लिये काम निकाल लेती। पर ऐसा भी नहीं था। पतिकी सेवा और संतानके लालनका कर्म अपने आपमें पूर्ण है। उसके होते हुए किसी बाहरी कर्मकी आवश्यकता नही रहती। पर मैं इससे भी वंचित थी। मेरी समस्या कैसी विकट थी! एक तरफ तो चढ़ती जवानीका जोश मेरी नसोंको उत्तेजित करके मुझे प्रचंड कर्मके लिये उकसा रहा था और दूसरी तरफ मैं अकर्मण्यताकी व्यर्थतासे क्षुब्ध हो रही थी।

मैं अच्छी तरहसे समझ रही हूँ कि लोग मेरी बातपर हँसेंगे। कहेंगे—"जब कर्म करनेकी उत्कट इच्छा तुम्हारे हृदयमें वर्त्तमान थी, तो तुमने देशहितका व्रत क्यों नहीं लिया? ऐसा करनेसे तुम्हारे लिये कर्मका अभाव न रहता। सभा-समितियोंमें व्याख्यान देकर, चरखेका प्रचारकर, गाँव-गाँवमें जाकर ग्रामीण स्त्रियोंकी राजनीतिक चेतना जागरितकर अपना कर्त्तव्य तुम निभातीं। यह कर्म ही सब कर्मोंसे श्रेष्ठ है और यह तुम्हारी ही प्रकृतिकी स्त्रियोंके योग्य है भी।"

हाय, दुनियाको इसकी क्या खबर कि यह कर्म तामसिकताका ही दूसरा रूप है! स्त्री-हृदयमें कर्मकी जो उत्कट वासना वर्त्तमान है, वह क्या इस पोपली 'कर्मबाजी' (इस प्रकारके विकृत कर्मवादका और क्या नाम दिया जा सकता है!) से कभी पूर्ण हो सकती है! सभा-समितियोंमें व्याख्यान देकर, उल्लसित जनताकी हर्षध्वनिसे पुलकित होकर, जयमाला गलेमें डालकर, राजनीतिक भोजसे तृप्त होकर, मोटरमें चढ़कर शहरकी परिक्रमा करके जुलूसके साथ उत्सुक भक्तवृंदको अपने दर्शन देकर क्या उपकार देशका और जनताका हो सकता है! और इस प्रकारके कर्ममें 'त्याग'की आवश्यकता ही क्या है?

ग्रामीण स्त्रियोंकी राजनीतिक चेतना ! इस अभागे देशमें 'स्त्री-जागरण'का आदर्श ही यही है ! अगर ईश्वरानुमोदित निपुल कर्मका मर्म इस जगतमें कोई समझ पाया है तो वह हमारे कगाल देशकी कर्मक्लिष्ट ग्रामीण स्त्रियाँ। ऐसी स्त्रियोंको राजनीतिक अधिकारके लिये कौंसिलोंमें लड़नेकी शिक्षा देकर हमारे देशनासी किस महती उन्नतिकी आशा करते है ?

१६

खेलते-खेलते एक 'गेम' भी पूरा न हुआ होगा कि डाक्टर कन्हैयालाल अपनी वही भयकर मुसकान लेकर 'वेडमिंटन' के कोर्टके पास आकर खड़े हो गए। इस समय वह अकेले थे, प्रोफेसर किशोरीमोहन उनके साथ नहीं थे। अभी कुछ ही देर पहले उनका अपमान करके, उनके प्रति उपेक्षाका भाव दिखलाकर और अपनी अद्भुत, चचल प्रकृतिका परिचय देकर मै अचानक उनके पाससे उठकर चली आई थी। पर इस समय फिर उन्हें देखकर मैं अपने जीवनकी चिंता भूल गई, कर्म—अकर्म और कर्तव्य-अकर्तव्यकी भावना मेरे हृदयसे तिरोहित हो चली ! मैं केवल निमूढ़-सी होकर उनकी अनिर्वचनीय रूप-माधुरी अतृप्त हृदयसे पान करने लगी। मैं अनुभव करने लगी कि मेरा जीवन अभी व्यर्थ नहीं हुआ है,—अभी उसका प्रारभ है और पुरुषके स्नेहसे पुलकित होकर उसे अभी आनदके नाना रँगोंमें रँगना है। फिर एक वार अनंत यौवन और अनंत जीवनकी तरग मेरे भीतर हिलोरें लेने लगी।

डाक्टर साहब आते ही उपदेश वघारने लगे। वोले—"यह क्या ! आपको शायद खबर नहीं कि आपके स्वास्थ्यके लिये इतना 'इगज़रशन'

भी बहुत खराब है। 'नर्वस डिजीज' में 'कह्वीट रेस्ट' ही एक ऐसा इलाज है जिसका कुछ असर हो सकता है। आपको 'कासर्वेशन आफ इनर्जी' का मूल्य समझना चाहिए।"

डाक्टर साहबसे मेरी बाते आज ही हुई थीं। पर इतने थोड़े समयके आलापसे ही उनकी धृष्टता इतनी अधिक बढ़ी देखकर मुझे आश्चर्य होना चाहिए था। पर कुछ नहीं हुआ। यह शायद इस लिये कि मुझे डाक्टर लोगोंके 'प्रिविलेज'—उनके विशेष अधिकार—का ख्याल हो आया। पर मैंने जब शकित होकर राजूकी ओर ताका तो एक पलकमें ही उसके मुखका भाव देखकर मैं समझ गई कि डाक्टर कन्हैयालालके प्रति विद्वेषके भावसे उसका खून खौल रहा है। मैं घबरा गई। डाक्टर साहबको राजू ऐसी बुरी निगाहसे देख रहा था जैसे उसके जन्म-जन्मातरका बैरी अनेक समयके बाद फिर उसके सामने आ खड़ा हुआ हो। मैं सिरसे पैर तक काँपने लगी। पर डाक्टर साहबकी बातका उत्तर दिए बिना न रह सकी।

मधुर मुसकानके साथ बोली—"सारे ससारके अनुभवी लोग तो यह उपदेश देते हैं कि शरीरको हिलाने-डुलाने और हर वक्त उससे काम लेते रहनेसे तदुरस्ती बढती है, पर आप यह अनोखी बात सुनाते हैं कि उसे बिल्कुल आराम देना चाहिए।"

राजूके मुँहकी ओर ताककर डाक्टर साहबकी हँसी उनके होठोंमें ही विलीन हो गई थी। फिर भी बड़ी मुश्किलसे अपनेको सँभालकर बनावटी हँसी दिखलाकर उन्होंने कहा—"'लेटेस्ट थिओरी' यही है।"

राजू अचानक खिलखिलाकर हँस पड़ा। वह क्या सोचकर हँसा, कह नहीं सकती। पर उसकी हँसी और भी अधिक भयंकर थी। उसके

बाँए हाथमें 'शटलकॉक' था और दाहिने हाथमें रैकिट । 'शटलकॉक' को ऊपर उछालकर उसने उसपर ऐसे जोरसे रैकिट चलाया कि कुछ देर तक वह आकाशमें दिखलाई भी न दिया । 'शटलकॉक' कहाँ गिरा, इस बातकी बिलकुल परवा न कर वह सीधा बरामदेकी तरफ आगे बढा और डाक्टर साहबके पास आकर खडा हो गया । उसका स्वास्थ्य, सौंदर्य, दृढता और तेज देखकर डाक्टर साहब चकित रह गए । आकस्मिक और अनिच्छित सभ्रमके कारण बेबस कुछ पीछे दबकर खडे हो गए और उसका मुँह ताकते रह गए । उन्हें शायद अपने झूठे तेजका बड़ा घमड था । उनका वह दर्प अपने भाईकी सच्ची तेजस्विताके आगे चूर होते देखकर मैं गर्वसे पुलकित हो उठी । पर कहीं राजू कोई बेजा बात उनसे न कह बैठे, इस चितासे मेरा कलेजा ज़ोरोंसे धडक रहा था । मैं अभी तक 'बैडमिंटन'के कोर्टमें अपने ही स्थानपर खड़ी थी । वहाँसे हटनेकी हिम्मत नहीं होती थी ।

राजू व्यंगपूर्वक मुस्कुराते हुए बोला—"आपकी यह 'लेटेस्ट थिओरी' बडे मजेकी है, इसमें शक नहीं ।"

अपनी सारी-शक्ति एकत्रित करके मैं आगे बढी और दोनोंका पारस्परिक परिचय कराते हुए बोली—"डाक्टर साहब, यह मेरा भाई राजू है—राजू, यह डाक्टर कन्हैयालाल हैं ।"

पारस्परिक अभिवादनके बाद डाक्टर साहब बोले—"आपकी तारीफ आपके पिताजीसे बहुत सुना करता था । आज आपके दर्शन पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई । आपका चेहरा और बदन देखने लायक़ हैं, इसमें शक नहीं ।"

डाक्टर साहब लोगोंको वशमें करना जानते थे । प्रोफेसर किशोरीमोहनने भी इस बातकी ताईद की थी, और मैं इसकी यथार्थताका अनुभव

बडे दु खका भाव प्रकट करते हुए डाक्टर साहबने कहा—" यह अच्छा नही । स्त्रियोंका नॉर्मल टेपरेचर तो वैसे ही पुरुषोंसे ज्यादा रहता है । और आप फर्माती हैं कि आपका सतानवेसे भी कम रहता है । 'एनीमिया'के कारण वदनमे खून कम हो जाता है, और खूनकी कमीसे वदनकी गरमी भी जाती रहती है । पर आपको अवश्य ही कोई-न-कोई भीतरी रोग है । किसी लेडी डाक्टरको आप पहले बुलावें । "

" आपका क्या यह ख्याल है कि लेडी डाक्टर मेरी बीमारी ठीक ठीक मालूम करके उसका इलाज कर लेगी ? "

मेरा प्रश्न जरा विकट था । उसका मर्म न समझकर डाक्टर साहब बोले—" क्यों न करेगी ? "

मैंने कहा—" मुझे तो विश्वास नही होता । "

" तव ? आप क्या चाहती है ? आपकी भीतरी शिकायतोका हाल मैं कैसे मालूम कर सकता हूँ ? "

" आप क्या यह समझते हैं कि जगह-जगह रबरकी नली लगाकर शारीरिक विकारोंका पूरा-पूरा ब्योरा मालूम कर लेनेसे ही क्या मनुष्यकी अस्वस्थताका कारण जाना जा सकता है ? शारीरिक विकार ही क्या सब कुछ हैं ? "

" नहीं, मानसिक विकारोंपर भी 'मेडिकल सायस' विचार करता है । 'साइकोपेथी' का सबध मानसिक विकारोंसे ही रहता है । मनुष्य क्यों पागल होता हैं, क्यों अनिच्छा होनेपर भी ऐसे-ऐसे काम कर बैठता है, जिनके लिये वह बार-बार पछताता रहता है, क्यों युधिष्ठिर और नल जैसे सात्विक पुरुषोंमें जुआ खेलकर अपना सर्वनाश करनेकी प्रवृत्ति पाई जाती है, क्यों रूसो और टाल्सटाय जैसे महात्मा घोर नीच

कर्मोंमें लिप्त रहे, क्यों महात्मा गाँधी जैसे सहृदय व्यक्तिको जीवन-भर अत प्रकृतिकी दुर्बलताएँ सताती रही है, क्यों विशेष-विशेष प्रकृतिके स्त्री-पुरुषोंमें खून करने या आत्महत्या करनेकी उत्कट लालसा रहती है, ‘ साइकोपेथी या ‘ साइकिएट्री ’के अध्ययनसे हमें इन्हीं बातोंका ज्ञान होता है। हृदय और मस्तिष्कके सूक्ष्म कोषोंके दुर्बल पड जानेसे मनुष्य-की प्रकृतिमें असामजस्य उत्पन्न हो जाता है। इस असामजस्यके कारण वह ऐसे-ऐसे अभावनीय काम कर बैठता है और उसकी प्रवृत्तियाँ ऐसी अनोखी हो जाती हैं कि देखकर दिमाग चकरा जाता है।”

१८

किस उद्देश्यसे मैंने वह प्रश्न किया था और उत्तरमें कैसी-कैसी अनोखी बातें सुननेमें आई! धिक्कार है डाक्टर लोगोंकी मोटी बुद्धिको! निराश होकर मै कुछ कहना ही चाहती थी कि अचानक रञ्जन अपने नगे सिरमें अपने घुँघराले, चमकीले और कोमल बालोंकी बहार दिखलाता हुआ, अपनी सुदर, शात, धीर, गभीर और करुण, आँखोंसे अपूर्व, अनिर्वचनीय ज्योति निकीरित करता हुआ, अपने रूप और व्यक्तित्वसे डाक्टर साहबको चकित और मुझे गर्वित और रोमाचित करता हुआ आ पहुँचा। अपने भाईका सामान्य रूप और साधारण गुण भी देखकर किस बहनको गर्व नहीं होता! तब ऐसे तेजस्वी भाईको देखकर मुझे कैसे उत्कट आनदका अनुभव होता होगा, इसका अनुमान सहजमें किया जा सकता है।

रञ्जन को देखते ही मैं सँभलकर उठ बैठी। मेरे सिरका अचल नीचे खिसक गया था। डाक्टर साहबके सामने मैंने इस बातकी कुछ

परवा न की थी। बल्कि जान-बूझकर अपना सिर निर्वस्त्र ही रहने दिया था। पर रञ्जनके आनेपर एकदम अपना सिर ढक लिया। अँगरेज़ीमें यह मसल मशहूर है कि अपराधीका मन सदा शंकित रहता है। उस कमरेमें अकेले डाक्टर साहबके सामने उस अवस्थामें कौचके ऊपर लेटे हुए देखकर राजू अपने मनमें क्या सोचेगा, इस बातका ख्याल करके मैं काँपने लगी। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मुझे उस अवस्थामें देखते ही उसका मुँह पहले तो लज्जाके कारण लाल हो आया और पीछे धीरे-धीरे उसकी रंगत उतरती गई और वह पीला पड़ता गया। रञ्जनको देखते ही मेरे हृदयमें जो एक गर्वका भाव उत्पन्न हुआ था वह धीरे-धीरे तिरोहित होता गया और अज्ञात भयने उसका स्थान अधिकृत कर लिया।

डाक्टर साहब रूखी हँसी हँसकर उसका स्वागत करते हुए बोले— "आइए साहब, तशरीफ रखिए। मानसिक विकारोंकी चर्चा छिड़ रही है। आपकी बहन पूछ रही थी कि मनुष्यकी अस्वस्थतामें क्या मानसिक विकारोंका कोई महत्त्व नहीं है? मैं कहता हूँ कि शारीरिक विकारोंके कारण ही मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं।"

किस विषयकी चर्चा छिड़ रही है और किसकी नहीं, इसकी कैफियत डाक्टर साहबने प्रारम्भमें ही दे देना उचित समझा। इससे साफ उनकी घबराहट झलकती थी।

रञ्जन जब कुर्सीपर बैठ गया तो मैंने कहा—"डाक्टर साहब कहते हैं कि महात्मा गांधीको जीवन-भर भीतरी दुर्बलताओंका सामना करना पड़ा है, रूसो और टाल्सटायकी प्रकृति सात्विकी होनेपर भी उन्हें घोर नीच कर्मोंमें लिप्त रहना पड़ा है, मनुष्यकी अंतःप्रकृतिके इन सब अस्वाभाविक विकारोंका कारण 'मेडिकल सायंस' बतलाता है।"

रञ्जन जब मेरी बात सुन रहा था तो उसकी आँखोंमें आज सहज स्नेहका भाव वर्तमान नहीं था। उसके इस भावसे मेरे दिलमें गहरी चोट पहुँची। मेरी बात समाप्त होते ही उसने मेरी तरफसे उसी दम मुँह फिरा लिया और व्यंगकी तीखी मुसकानसे डाक्टर साहबका मर्म बेधता हुआ वह बोला—" तब तो डाक्टर साहब, आप इसी दम कोई 'मिक्शचर' या 'टॉनिक' 'प्रेस्क्राइब' करके साबरमतीको भेज दीजिए। महात्माजीका दिल और दिमाग ठीक होनेसे उनके स्वभावमें 'सामंजस्य' और 'स्वाभाविकता' आ जायगी। इस प्रकार देशका कितना बडा उपकार होगा, इस बातका वर्णन नहीं हो सकता। उनकी प्रकृतिके असामंजस्यके कारण देश कभी नीचेकी ओर झुक रहा है कभी ऊपरकी ओर। डाक्टरी विद्याद्वारा इसका इलाज हो सकता है, यह बात बिलकुल नई, मौलिक और चमत्कारपूर्ण है।"

डाक्टर साहब इस समय तक घबराए हुए थे। इस बार कुछ खीझ उठे। कुछ तमककर बोले—" तो क्या आपका विश्वास 'साइकोपेथी'में नहीं है?"

" विश्वास? अजी रामका नाम लीजिए। यहाँ तो ईश्वरमें भी विश्वास नहीं है, प्रकृतिकी करामातमें भी नहीं। फिर डाक्टरी विद्या तो तुच्छ विषय है। हाँ, आपकी बातपर मुझे अवश्य विश्वास होना चाहिए।"

डाक्टर साहब चौंक पडे। कुर्सीमें जरा डटकर बैठ गए और बोले—" तो क्या आप यह बात भी नहीं मानना चाहते कि उपयुक्त ओषधियोंके सेवनसे रोग अच्छे हो जाते हैं?"

राजूने स्थिरतापूर्वक कहा—" आप क्या सचमुच इस बातपर विश्वास करते हैं? अपनी छातीपर हाथ रखकर अपने अंत करणसे पूछिए कि

आपके इलाजसे आज तक जितने रोगियोंको फायदा पहुँचा है वह क्या आपकी दवाइयोंके सेवनसे ? सच्चे दिलसे यह बात बतलाइए कि डाक्टरी विद्या कोई निश्चित विद्या है या अटकलपच्चू शास्त्र ? प्रकृतिके सुनियत और सुनिश्चित नियमोंसे क्या उसका कुछ भी संबंध है ? "

डाक्टर साहब राजूकी बातका कोई उत्तर न दे सके। पर अपनी हार स्वीकार करना वह अत्यंत लज्जास्पद समझते थे। इस कारण कुछ अकड़कर दृढ़ताका ढोंग रचकर बोले—"है क्यों नहीं ! प्रकृतिसे उसका संबंध नहीं है तो किससे है ? "

उनकी व्यर्थकी अकड़बाजी देखकर राजू कुछ अजीब ढंगसे मुस्कुराया। अपना स्वर अधिक कोमल करके बोला—"अच्छी बात है, साहब। यह बात मान ली कि प्राकृतिक नियमोंके ऊपर ही आप लोगोंकी विद्या स्थित है। पर यह तो बतलाइए कि जबसे सभ्य-समाजमें वैद्यकशास्त्रका प्रचार हुआ है तबसे मानव-शरीरने कितनी तरक्की कर-ली है ? मैं तो स्पष्ट ही यह देखता हूँ कि डाक्टरी विद्या जितनी ही उन्नति करती जाती है, मानवसमाजमें रोगोंकी वृद्धि भी उसी परिमाणमें होती जाती है। इस विंश शताब्दीमें प्रतिवर्ष नए-नए रोगोंकी सृष्टि हो रही है। प्रतिवर्ष लाखों मनुष्य कालकी कराल गतिमें बेबस बहते चले जा रहे हैं, पर डाक्टर लोग यह देखकर भी कि रुद्रके प्रलयकर चक्रका सामना वे किसी प्रकार नहीं कर सकते, अपनी करतूतसे बाज नहीं आते। मजा यह है कि ज्यों-ज्यों सभ्यता आगेको बढ़ती जाती है, डाक्टरोंकी संख्या उससे डबल तेजीके साथ बढ़ रही है। अकेले इंगलैण्डमें इस समय कम-से-कम पचीस हजार डाक्टर वर्तमान हैं। कुछ ठिकाना है ! अब बतलाइए, इन महापुरुषोंने इंगलैंडको क्या फायदा पहुँचा रक्खा

हैं ? क्या वहाँके लोगोंकी आयु बढ़ने लगी है ? क्या वहाँके लोग अब 'रोग-प्रूफ' हो गए हैं ?"

डाक्टर साहबने कहा—" 'रोग-प्रूफ' नहीं हुए—हो भी कैसे सकते हैं! पर हाँ, वहाँ डाक्टरोंकी संख्या अधिक होनेसे वहाँके लोगोंको रोग कम सताया करते हैं। इधर हिंदोस्तानका हाल देखिए। डाक्टरोंपर हम लोगोंका विश्वास नहीं है, डाक्टरोंको यहाँ उत्साह नहीं मिलता। इसलिये हम देखते हैं कि यहाँ भरी जवानीमें ही प्रतिदिन असंख्य स्त्री-पुरुष मौतके शिकार बनते हैं।"

व्यंगके साथ उनकी बातपर हुँकारा भरकर राजू बोला—" जी हाँ। यह तो है। पर आप क्या दावेके साथ यह बात कह सकते हैं कि विलायतके लोग भरी जवानीमें नहीं मरते ? अनुभव यही कहता है कि भरी जवानीमें जैसे भयंकर रोगोंसे वहाँके लोग पीड़ित रहते हैं उसका अनुमान भी भारतके लोग नहीं कर सकते। मांस और मदिराके सेवन और मायावी युवतियोंके सत्संगसे उन लोगोंका जो महोपकार होता है, उससे परिचित होनेका सौभाग्य हमारे युवकोंको कहाँ प्राप्त होता है! वहाँके युवक इस प्रकारके घृणित भोग-विलासमें रत रहनेके कारण बीस वर्षकी अवस्थासे ही 'कॉलिक,' 'कैंसर,' 'हेमरेज,' 'एपेंडिसाइटिस' और 'फिरंगी रोग'से पीड़ित होने लग जाते हैं। वहाँकी युवतियाँ तो और भी अधिक रोग-ग्रस्त रहती हैं। यह सब होनेपर भी औसतमें वहाँके लोग हिंदोस्तानियोंसे अधिक परिश्रमी होते हैं—इसका कारण यही है कि जीवनके आनंदसे वे लोग परिचित हो गये हैं, और हम लोगोंके हृदयोंमें नाना कारणोंसे जीवनके प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। अब सवाल यह है कि अगर डाक्टरी विद्या रोगोंको उपशम करनेका दम भरती है, तो जिस देशमें इस विद्याकी सबसे अधिक

उन्नति हुई है, वहाँके लोगोंको रोग क्यों अधिक सताते हैं? असल बात यह है कि मनुष्य-समाज अंध, स्वतन्त्रबुद्धिसे हीन और अनुकरणशील है। प्रकृतिके अनत रहस्यका एक आध बिखरा हुआ छींटा उसे कहीं मिल जाता है तो वह फूला नहीं समाता और एकदम यह अनुमान कर लेता है कि उसने पूरे रहस्यका पता लगा लिया है। डाक्टरोंने रोगोंका बाहरी रूप देखकर अपने-अपने अनुभवसे अनोखी-अनोखी दवाइयोंका आविष्कार किया है। अब यह मजा हो गया है कि प्रतिदिन सैकड़ों नई-नई दवाइयोंका आविष्कार होता जाता है और एक दवाईके सेवनसे जो खराबी पैदा होती है उसके निराकरणके लिये दूसरी दवाई दी जाती है। इधर मरीज यह समझता है कि उसका इलाज हो रहा है। यह बडे मजेका इलाज है, इसमें शक नहीं।"

१९

डाक्टर साहब और मैं बड़े ध्यानसे उसकी बातें सुन रहे थे। इसके उत्तरमें एक शब्द भी डाक्टर साहबके मुँहसे नहीं निकलता था। कुछ देरतक चुप रहकर रूमालसे अपना मुँह पोंछकर वह फिर कहता चला गया—"डाक्टर लोग मनुष्यका स्वास्थ्य बढ़ानेके लिये पैदा नहीं हुए हैं। उनका उद्देश्य रोगोंको दमन करनेका रहता है। रोगोंसे ही उनका सबध रहता है, मेडिकल कालेजमें वे लोग रोगोंका ही अध्ययन करते हैं, स्वास्थ्यका नहीं। और तो क्या जीवोंमें रोगोंके कीटाणुओंका प्रवेश कराके विशेष-विशेष रोगोंके निरीक्षणमें विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं। ऐसी हालतमें स्वास्थ्यका विचार ही उनके मस्तिष्कमें कैसे उत्पन्न हो सकता है। स्वास्थ्यको 'बैकग्राउड'में रखकर

रोगोंके अध्ययनको प्रधानता देनेका अर्थ यही है कि जीवित मनुष्यको छोड़कर उसकी छायाकी गतिसे उसका भीतरी हाल मालूम किया जाय। इस कारण डाक्टरी विद्या मूलमें ही सत्ताहीन और ढकोसलेसे भरी है। असल बात यही है कि मनुष्य जन्मसे ही रोग और मृत्युकी ओर, अपने अनजानमें, धीरे धीरे एक-एक पग आगेको बढ़ता ही जाता है। उसके सारे जीवनको अगर हम मृत्यु नामक तीर्थकी महायात्रा कहें तो कुछ अनुचित न होगा। क्यों आदमी पैदा होता है, क्यों मरता है, क्यों यह शरीर नाशवान् है, क्यों यह रोग-व्याधिसे पीड़ित रहता है, स्वास्थ्यका आदर्श क्यों एक निरी कल्पना है, ये सब गहन तथ्य हैं। इनका पता लगाना मनुष्यकी क्षमताके अतीत है। ऐसी हालतमें डाक्टर लोगोंका दम्भ और विद्या-चातुर्य अत्यन्त असहनीय जान पड़ता है। अगर संसारसे डाक्टरी विद्या बिल्कुल उठ जाय तो मनुष्य प्राथमिक युगके दीर्घजीवी और अपेक्षाकृत स्वस्थ जंगली लोगोंकी तरह स्वाभाविक जीवन व्यतीत करके बिना रोगोंकी चिंताके शांतिसे मर सके।"

उसकी बात समाप्त होनेपर कुछ देर तक कमरेमें बिल्कुल सन्नाटा रहा। अचानक डाक्टर साहबने उसकी पीठ ठोंकी और बोले—"खूब भाई खूब! यह बड़े मजेकी लेक्चरबाजी रही। इतनी छोटी उम्रमें ही आप जीने और मरनेके सवालके पीछे लग गए। यह अच्छा ही है। पर हम करें क्या! हमारा तो पेशा ही यही है। कोई मरे चाहे कोई बचे। यहाँ तो पापी पेटसे मतलब है। डाक्टरी विद्या कैसी ही निगोड़ी क्यों न हो, हमारे लिये तो कल्पवृक्ष है। हाँ, अगर आप लोग कृपापूर्वक मेरे लिये दो रोटी सुबह और दो रोटी शामका बंदोबस्त कर सकें तो मैं अभी यह पेशा छोड़ दूँ!"

डाक्टर साहबके इस सरल परिहाससे राजूके मुँहसे व्यंगका भाव तिरोहित हो गया। वह भी निष्कपट परिहासके स्वरमें बोला—"क्यों, आप क्या अकेले हैं? मियाँ-बीबीके बीच क्या 'डॉयवोर्स'का मामला चल रहा है?"

"नहीं साहब, मेरे तो बीबी ही नहीं है, 'डायवोर्स' कहाँसे हो! मैं बिलकुल अकेला और भार-मुक्त हूँ। आप लोगोंको केवल मेरी ही चिंता करनी पड़ेगी। कहिए, आप क्या राजी हैं!"

डाक्टर साहबकी अवस्था प्राय. बत्तीस सालके होगी। अभी तक उनका विवाह ही नहीं हुआ है, या उनकी स्त्रीकी मृत्यु हो गई है, यह बात जाननेके लिये मैं बड़ी उत्सुक हो रही थी। पर लाचार थी। फिर भी इस बातसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि राजूके और उनके बीच विरोध और विद्वेषका जो भाव धीरे-धीरे जागरित हो रहा था, वह अब ठंडा पड़ने लगा है।

राजूने कहा—"हमें एक 'फेमीली' डाक्टरकी जरूरत है। आपकी इच्छा हो तो आप शौकसे यहाँ रह सकते हैं।"

डाक्टर साहबको सभवत बड़ा आश्चर्य हुआ। बोले—"यह क्यों साहब! डाक्टरोंपर तो आपका बिलकुल विश्वास ही नहीं है। इसी बातपर इतनी बहस हो गई। अब आप कहते हैं कि 'फेमीली' डाक्टरकी जरूरत है!"

राजूने कहा—"औरतोंको यह बात कैसे समझाई जाय! उनके लिये तो आप लोग ही सृष्टि-रक्षक हैं। अम्माँसे अगर आप यहाँ रहनेका प्रस्ताव करते तो वह फूली न समातीं।"

मैं रह न[illegible]स कर। बोल उठी—"सिर्फ अम्माँ ही क्यों, मैं भी आपसे अनुरोध करूँगी कि आप यहीं रहें।"

मेरी यह बात बिलकुल असगत, असामयिक और अशोभन थी। कहते ही लज्जासे मेरा सारा शरीर जर्जरित हो उठा। मैंने सिर नीचा कर लिया। राजूके मुँहकी ओर ताकनेका मुझे साहस नहीं हुआ।

कुछ देर तक चुप रहकर राजूने कहा—"चलिए डाक्टर साहब, आपको सैरके लिये ले चलें। बैठे-बैठे जी उकता गया है। पार्ककी हवा खाते हुए ज़रा चौककी तरफ हो लें।"

डाक्टर साहब प्रसन्न होकर बोले—"अच्छी बात है।"

राजूके साथ घनिष्ठता बढते देखकर वह अपनी प्रफुल्लता छिपा न सके।

मैंने कहा—"मैं भी चलूँगी।"

अपनी असहनीय तीक्ष्ण दृष्टिसे मेरी ओर ताककर राजूने बिना कुछ उत्तर दिए मुँह फिरा लिया और वह शोफरको बुलाने चला गया।



दूसरा भाग।

— ० —

१

तबसे डाक्टर कन्हैयालाल नित्य हमारे यहाँ आने लगे। वह अब बिना किसी द्विविधा या रुकावटके मेरे पास आ जाया करते थे। हम दोनों अकेले घटों बैठकर गप्पें मारा करते थे। कामकी बातें कभी नहीं होती थीं। मेरा काम ही क्या था! पर हम लोग ऐसा भाव दिखलाते जैसे कोई बडा भारी दायित्व दोनोंके ऊपर आ पडा हो, और एक दूसरेसे सलाह लेना परम आवश्यक हो गया हो। जिस दिन किसी कारणसे डाक्टर साहब मेरे पास न आ सकते उस दिन मिनटोंको गिनते-गिनते अत्यत अधैर्य और व्याकुल उत्सुकताके साथ मेरा समय बीतता था।

ज्यों-ज्यों डाक्टर साहबसे मेरी घनिष्ठता बढती जाती थी, त्यों-त्यो मेरी स्नायविक दुर्बलता भी जोर पकड़ने लगी। उनके सामने मेरा हृदय उद्दीप्त होकर उमगसे भर जाता था, पर उनके चले जानेपर मुझे ऐसा जान पड़ता जैसे सारा शून्य अपना निकराल मुँह खोलकर मुझे निगलनेको तैयार है, और एक भयकर अवसादके बोझसे मेरी छाती दब जाती थी। मैं गाढ़ी नींदके लिये कुटुम्ब-भरमें विख्यात थी। पर अब धीरे-धीरे मुझे उन्निद्राका रोग पकडने लगा। रातको खा-पीकर जब मैं बिस्तरमें लेट जाती तो मेरी आँखें उसी दम झपने लगतीं और कुछ देरके लिये मुझे नींद आ जाती। पर वह नींद गाढी नींद नहीं कही जा सकती। अनेकानेक विकट और भयकर स्वप्नोंके

उपद्रवसे नींदके समय भी मेरा दिल जोरोंसे धडकता रहता । कुछ ही देरके बाद अचानक नींद उचट जाती और तब मेरा भय दुगना बढ़ जाता । यद्यपि मेरे कमरेकी बत्ती रात-भर जली रहती थी, पर फिर भी आधी रातमें विकट स्वप्न देखनेके बाद अचानक नींद उचटनेपर भयके कारण मेरी आत्मा इस लोकमें नहीं रहती थी । बत्तीके इर्द-गिर्द पतिंगे फडफडाया करते थे । उनके फडफड़ानेके शब्दसे ही मैं बीच-बीचमें चौंक पडती । मै ऐसी हौलदिल हो गई कि उस कमरेमें अकेले पड़े रहना मेरे लिये कठिन हो गया । लीला अम्मॉंके साथ सोया करती थी । जब मेरी हालत बहुत खराब होने लगी तब मैने अम्मॉसे लीलाको अपने साथ सुलानेकी आज्ञा मॉगी । मेरी घबराहट और डर देखकर अम्मॉ मुस्कुराईं ।

तबसे लीला मेरे ही कमरेमें सोने लगी । सोनेके पहले वह कहानी सुनानेके लिये जिद करती । कहानी सुननेके बाद जब वह सो जाती तो मुझे उसके निश्चित निर्विकार जीवनपर ईर्ष्या होने लगती ।

एक स्त्री दूसरी स्त्रीके सामने अपना डरपोकपन जाहिर नहीं करना चाहती, पर पुरुषके (विशेषतया अपने प्रेमिक जनके) निकट अपनी दुर्बलता, हीनावस्था, और दुर्गतिका वर्णन करनेमें अवर्णनीय आनंदका अनुभव करती है । डाक्टर साहबके निकट मैं दिल खोलकर अपनी शोचनीय अवस्था व्यक्त करके उनकी समवेदना उभाड़नेकी चेष्टा करती थी । वह मुझे परहेजसे रहनेका उपदेश देते और एक-आध दवा ' प्रेस्काइब ' कर जाते । मैं शौक और विश्वाससे उस दवाको पीती थी। उनके ऊपर मेरा विश्वास देखकर राजू बहुत कुढ़ता था और बीच-बीचमें बोलियॉं सुनाता था ।

अम्माँ डाक्टर साहबको देखकर बहुत प्रसन्न थीं। डाक्टर साहब भी उनके प्रति यथेष्ट श्रद्धाका भाव प्रदर्शित करते थे। एक दिन मुझे हलका-सा बुखार आया। अम्माँ बहुत घबराईं। डाक्टर साहबके आनेपर रोती हुई बोलीं—"इस लड़कीकी फिक्रके मारे मैं रात दिन बेचैन रहती हूँ, डाक्टर साहब! कभी इसे बुखार आता है, कभी-पेटमें दर्द रहता है, कभी नींद न आनेकी शिकायत करती है। मुझे बिलकुल उम्मेद नहीं रहती कि यह ज्यादा बचेगी। इसका इलाज कीजिए, नहीं तो हम लोग कहींके न रहे।"

डाक्टर साहब दिलासा देते हुए बोले—"चिंता किसी बातकी न कीजिए। इस उम्रमें अस्सी फीसदी स्त्रियोंको रोग आ घेरते हैं। दो-एक सालके बाद इनका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो जायगा।"

आज बहुत दिनोंके बाद अम्माँके हृदयमें मेरे प्रति स्नेहका भाव उमड पडा था। अपने सभ्य समाजके निमत्रण-आमत्रण और उत्सवोंमें व्यस्त रहनेके कारण आज तक हम लोगोंकी खबर पूछनेकी भी फुर्सत उन्हें नहीं रहती थी। यदि हमसे वह कभी बोलतीं भी तो झिड़ककर और रुखाईके साथ। मैं यह नहीं कहती कि उनके मनमें हमारे प्रति स्नेहका भाव वर्त्तमान नहीं था। पर उनकी उपेक्षा आश्चर्यजनक और असाधारण थी। आज उनका दिल मुझे देखकर भर-भर आता था। वह डाक्टर साहबके सामने बिलख-बिलखकर, फूट-फूटकर रोने लगीं। शायद उन्हें इस बातका खयाल हुआ कि वह परिणतावस्थामें 'सोसायटी' के आनदमय उत्सवोंमें सम्मिलित होकर जीवनका सुख प्राप्त कर रही हैं और उनकी लड़की नई जवानीमें सगहीन, अकेली और चिंता-ग्रस्त रहती है—*चिंताओंसे पीड़ित रहनेके कारण ही वह बीमार रहती है और आज*

उसे इसी कारण ज्वर आया है। मैं ठीक कह नहीं सकती कि वह क्या सोच रही थीं। पर मैंने ऐसा ही अनुमान किया।

२

मेरा बुखार बढ़ता चला गया। घरके सब लोग चिंतित हो उठे। राजू भी बहुत घबराया। लीलाको मैं हरवक्त अपने पास रखना चाहती थी, पर वह बैठे-बैठे उकता जाती थी और बाहर खेलने चली जाती। तेरह सालकी हो चली थी, पर अभी तक अज्ञान थी। उसके लिये मुझे अधिक दु:ख था।

डाक्टर साहब दिनमें तीन-तीन चार-चार बार आते थे और जी-जानसे मेरी टहलमें लगे थे। छठे दिन मेरे सारे शरीरमें भयंकर वेदना होने लगी। सिरके दर्दका तो वर्णन नहीं हो सकता। "हाय अम्मां! हाय काका! हा राम!" चौबीसों घंटे मैं यही चिल्लाया करती।

बीमारीका बुरा हाल देखकर डाक्टर साहब चौबीसों घंटे मेरे पास रहने लगे। कभी टेंपरेचर लेते, कभी नाड़ी देखते, कभी इंजेक्शन देते, कभी दवाई पिलाते, कभी धाईको सारा बदन गरम पानीसे सेंकनेका उपदेश देते। उनका अज्ञात परिश्रम देखकर राजूकी आँखोंमें भी उनके प्रति कृतज्ञताका भाव छलक उठता था, इस बातपर मैं अपनी उस बुरी हालतमें भी गौर कर रही थी।

दसवें दिन मैं सन्निपात-ग्रस्त होकर बेहोश हो गई। दो-तीन दिन तक यही हाल रहा। फिर धीरे-धीरे चैतन्य होने लगा। धीरे-धीरे खानेकी रुचि जागरित हुई। धीरे-धीरे कमजोरी घटने लगी। प्राय: चालीस दिनके बाद मैं चारपाईसे उतरकर नीचे पाँव रखनेमें समर्थ

हुई । मेरा पुनर्जन्म हो गया था । डाक्टर साहबका विजयोल्लास उनके मुँहमें उद्दाम भावसे, असयत तीव्रतासे चमकने लगा ।

अम्माँ कृतज्ञतासे गद्गद होकर गिड़गिडाकर उनके पैरोंमें गिर पड़ीं । चौंककर, घवराते हुए डाक्टर साहबने उनका हाथ पकडा और ऊपरको उठाया । बोले—" आप ऐसी बुद्धिमती होकर यह क्या करती हैं ! "

" आपकी ही वजहसे मेरी लड़कीकी जान बच गई । नहीं तो क्या आज मैं कभी—" अम्माँ अपनी बात पूरी न कर सकीं । अचलसे मुँह ढाँपकर बेबस रोने लगीं ।

" यह कैसे हो सकता है ! आदमीकी क्या ताक़त कि वह किसीको बचा सके और किसीको मार सके ! जिसने सबको पैदा किया है उसके कोपका सामना कोई नहीं कर सकता । उसीकी दयासे आज हम लोग घोर अनर्थसे बच गए । "

डाक्टर कन्हैयालालको मैं नास्तिक समझती थी । पर आज मालूम हुआ कि सृष्टिके अज्ञात परिचालकपर उनका भी विश्वास है ।

मैं उनकी ओर ताककर बिना कुछ कहे, यह भाव जतलाती हुई मुसकुराने लगी कि मेरे ऊपर उनका कोई अहसान नहीं है—अपना कर्त्तव्य समझकर अपनी गरजसे ही उन्होंने मेरी टहल की है । मेरी इस अकृतज्ञ मुसकानके उत्तरमें उन्होंने अपनी बाँकी चितवनसे मेरा सुकुमार हृदय चीर डाला । उनकी इस मुसकान रहित, आवेश-विह्वल चितवनमें वही चिर-परिचित नशा पूर्णमात्रामें विद्यमान था । उसकी अनिर्वचनीयतासे पुलकित होकर मेरा कलेजा धड़कने लगा । जी चाहने लगा कि रो रोकर उनके पैरोंमें गिर पड़ूँ और सारे कलेजेको आँसुओंके रूपमें बाहर निकाल डालूँ । उनकी आँखोंके उज्ज्वल, सरस पर करुण आवेशसे मेरी मुसकान

किसी मन्त्रके बलसे तिरोहित हो गई और मेरे हृदयमें गभीर विषाद छा गया।

राजूने आकर कहा—"डाक्टर साहब, इतने दिनोंकी कडी मेहनतसे आप थक गए हैं। चलिए एलफ़ेड पार्ककी ठंडी हवासे थकान दूर कीजिए।"

मैंने कहा—"मैं भी चलूँगी।"

डाक्टर साहब बोले—"यह क्यों! आपको अभी कुछ दिनोंतक 'क्वीट रेस्ट' करना होगा।"

"तो आप लोग भी यहीं बैठे रहें। मैं यहाँ अकेली नहीं रह सकती।"

राजू कुछ देर तक बडे गौरसे मेरी ओर ताकता रहा।

"आप बैठिए डाक्टर साहब, मैं चला।" यह कहकर वह बिना किसीके उत्तरकी प्रतीक्षा करके चल दिया। अपने भाईकी निर्मोहिता देखकर मैं दंग रह गई।

कुछ देर तक डाक्टर साहब और मैं स्तब्ध होकर बैठे रहे। फिर डाक्टर साहब बोले—"आपके भाई सनकी और तेज़-मिजाज़ मालूम होते हैं।"

मैं बलपूर्वक चेष्टा करके मुस्कुराने लगी। मेरी उस मुस्कुराहटमें ग्लानिका आभास शायद स्पष्ट झलक रहा था।

३

दिन ढल चुका था। मैं अपने कमरेमें बैठकर चाय पी रही थी। डाक्टर साहब इतनेमें आ खडे हुए। मुझे इस समय चाय पीते देखकर आश्चर्यसे पूछने लगे—"यह क्या! आज बेवक्त क्यों?"

मैंने कहा—"चायके लिये मै कभी वक्त-वेवक़्तका विचार नहीं करती। जब जी चाहता है पी लेती हूँ।"

"पर माफ कीजिए, चाय आपके लिये किसी तरह भी फायदेमंद नही है। मैंने आपसे 'वाइनो-हाइपोफास्फाइट्स'के सेवनके लिये कहा था। वह क्या आपने मँगाया है?"

"जी हाँ।"

"बस उसीका सेवन करते चले जाइए। चायको विष समझकर त्याग दीजिए।"

"यह कैसे हो सकता है, डाक्टर साहब? चायके कारण ही मेरे प्राण टिके हैं। यही मेरे जीवनका एक आधार है और इसीको आप छोड देनेके लिये कहते हैं।"

डाक्टर साहब खीझ उठे। बोले—"स्त्री-जाति जहरीली होती है। इसलिये जहरके पीनेसे उसके प्राण टिके रहें, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। विषके कीड़े विषके सेवनसे ही प्राण धारण करनेमें समर्थ होते हैं।"

मैंने पूछा—"क्यों, स्त्री-जाति जहरीली क्यों होती है?"

यह प्रश्न करते समय मैंने अपनी आँखोंके विषका प्रयोग डाक्टर साहबपर करना चाहा था।

कुछ विचलित होकर अपनी दृष्टिकी प्रखरतासे उन्होंने मेरा मर्म वेधनेकी चेष्टा की। अपनी आवेश-विह्वल आँखोंसे एकटक मुझे ताककर मंद-मद मुस्कुराकर मुझे मत्र-मुग्ध करते हुए बोले—"स्त्री-जाति क्यों जहरीली होती है, तुम्हें क्या नहीं मालूम?"

आज पहली बार उन्होंने मेरे लिये ' आप ' के बदले ' तुम ' का प्रयोग किया। अनिर्वचनीय पुलकसे व्याकुल होकर मैंने काँपती हुई आवाज़में कठपुतलीकी तरह मत्र-विह्वल होकर बेवस उत्तर दिया—" नहीं।"

" अच्छी बात है। अगर मालूम नहीं है तो मालूम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं।"

मैं कुर्सीसे उठकर, न मालूम क्या सोचकर चारपाईपर बैठ गई। डाक्टर साहब अभी तक खडे थे और अपने 'ह्विप' को इधर-उधर घुमा रहे थे। मैं अपनी स्प्रिंगकी चारपाईका ऊपरका डंडा पकड़कर उसके सहारे लेट गई। पर कुछ ही देरके बाद लोहेके डंडेकी कठिनताके कारण मेरी पीठकी हड्डी दुखने लगी और मैं सँभलकर उठ बैठी। दोनों हाथोंको चारपाईकी दोनों ओर फैलाकर मैंने अपने पाँव नीचेको लटका दिए। मेरी साड़ी सिरसे नीचेको खिसक गई थी। मैंने उसे फिरसे ऊपरको समेटनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझी।

अपना यह अद्भुत विलास डाक्टरसाहबको दिखलाती हुई मैं बोली—" बैठिए डाक्टर साहब, आप खड़े क्यों हैं।"

घबराहट और भ्रांतिके कारण डाक्टरसाहब शायद पहले चारपाईके ऊपर ही बैठनेको आगे बढे थे, पर किसी अज्ञात शक्तिद्वारा अकस्मात् नियन्त्रित होकर एकदम ठिठककर सामनेवाली आराम कुर्सीपर बैठ गए। मैं खिलखिलाकर हँस पडी।

लज्जित और संभवत अपमानित होकर डाक्टर साहब बोले—"क्यों, हँसनेकी क्या बात है?"

" माफ कीजिए डाक्टर साहब, मेरा मन आज ठिकाने नहीं है। इस लिये बिना किसी कारणके बावली-सी हँस रही हूँ। बहुत सम्भव है, थोडी ही देरमें रोने लगूँगी।"

डाक्टर साहब दोनों हाथ जोड़कर स्तुतिका स्वाँग रचकर बोले—" हे मायावती, तुम धन्य हो! जब हँसी आई, तुम हँस देती हो, रोना आया, रो देती हो। हँसने और रोनेके बीचकी अवस्थासे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं। आत्माको पीस देनेवाली यह भयंकर मध्यावस्था भगवानने पुरुषके लिये ही रची है।"

हाथ जोडनेके समय भी 'ह्विप' उनके हाथमें ही था। मैंने कहा— " स्तुतिके समय पुष्प और बेलपत्रसे देवी-देवताकी अर्चना होती है। आप क्या कोडेसे मेरी अर्चना करने चले हैं ?"

डाक्टर साहब ठठाकर हँस पड़े। अकस्मात् दरवाजेपर राजू आ खडा हुआ। यमदूत भी यदि वहाँपर प्रत्यक्ष दिखलाई देता तो भी मैं शायद इतनी भयभीत न होती जितनी उसके आनेपर हुई। सिरको अंचलसे ढककर हड़बड़ाती हुई मैं चारपाईपरसे उठ बैठी। डाक्टर साहब भी सन्न थे।

राजू बिना कुछ कहे उल्टे पाँव लौट चला। मैं सोचने लगी— " क्या यम भी मेरे भाईकी तरह रूपवान् है ?"

४

हमारे कालेजकी लड़कियोंने एक नाटक खेलनेका उद्योग किया था। बीमार होनेके सबब मैं कोई 'पार्ट' इस साल न ले सकी थी। फिर भी नाटक देखनेकी बड़ी इच्छा थी। राजूके लिये

अलग निमत्रण आया था। नाटकमडलीकी सेक्रेटरी साहिबा उसपर विशेष रूपसे प्रसन्न थीं। एक ही दिनके परिचयमें वह उसके गुणोंपर मुग्ध हो गई थीं। पर राजूने जानेसे साफ इनकार कर दिया। इधर डाक्टर कन्हैयालाल इस नाटकके लिये विशेष उत्सुक और लालायित हो रहे थे। इस नाटकमें पुरुषोंके लिये निषेध था। पर एक नियम यह था कि सेक्रेटरीकी अनुमतिसे दो-एक विशेष-विशेष पुरुष प्रवेश कर सकते है। सेक्रेटरी साहिबासे डाक्टर साहबके दुर्लभ गुणोंका बखान करके मैंने उनके लिये अनुमति मॉगी। कमलिनी (सेक्रेटरी साहिबाका यही नाम था) इस ढगसे मुस्कुराने लगी जैसे वह मेरे दिलकी सब बातें ताड गई हो। बोली—" ऐसे गुणवान पुरुषको स्त्रियोंकी महफिलमें लाना क्या खतरेकी बात नहीं है ? "

मैंने पूछा—" खतरा कैसा ? "

" अरी पगली, समझती नही ? तेरे अनुमोदित और इच्छित पुरुषकी ऑखें जब इतनी अलबेली नारियोंपर दौड़ेंगी तो क्या फिर वह तेरी परवा करेगा ? "

" दुर ! " कहके मैंने गुस्सेमें आकर उसकी पीठपर एक धौल जमा दिया। पर उसकी इस बातसे मेरे हृदयमें भयका सचार होने लगा।

कमलिनीने कहा—" अच्छी बात है। मुझे कोई ऐतराज नहीं। पर मैं सावधान किए देती हूँ। पीछे पछताना पड़ेगा।"

युनिवर्सिटीके लड़कों और प्रोफेसरोंके साथ कमलिनीकी बडी घनिष्ठता थी। बहुत सभव है, उन लोगोंके स्वभावसे परिचित होनेपर वह पुरुषोंकी प्रकृतिसे अभिज्ञ हो चुकी थी। उसकी बातसे कुछ भय होनेपर भी मुझे विशेष चिंता नहीं हुई। मुझे अपने रूप-गुणका बड़ा घमड

था। किसी व्यक्तिको मुझे छोड़कर अन्यत्र जानेका लोभ हो सकता है, यह आशंका मेरे हृदयमें उत्पन्न नहीं हो सकती थी।

अम्माँने जानेका विचार किया था। पर सिरमें दर्द हो जानेके कारण वह न जा सकीं। लीला जाना चाहती थी, पर राजूने उसे समझा-बुझाकर रोक लिया। मुझसे राजूने कुछ नहीं कहा, और ऐसा भाव प्रदर्शित किया जैसे मैं उसकी बहन ही नहीं हूँ। डाक्टर साहबकी संरक्षकतामें मैं रातको खा-पीकर चल पडी।

नाटक-गृहके भीतर प्रवेश करके देखा कि यह वृहत् कक्ष विलासवती युवतियों और नवीना किशोरियोंकी सुमधुर गुंजारसे मुखरित था। एक-आध कोनेमें दो-एक पुरुष भी दृष्टिगोचर हो रहे थे, पर वे इस स्त्री-सागरमें बुद्‌बुदकी तरह विलीन होनेको थे। ऐसी हालतमें एक प्रखर व्यक्तित्व-सपन्न दर्शनीय पुरुषको बगलमें लेकर भीतर प्रवेश करनेमें मैं लज्जासे गडी जाती थी। हमारे प्रवेश करते ही तत्काल सैकडों उज्ज्वल आँखें हमारी ओर आ लगीं। डाक्टर साहबने सगर्व एक सरसरी दृष्टि चारों ओर दौडाई। स्त्री-समाजकी मुग्ध दृष्टिसे उल्लसित होनेके कारण उनका चेहरा तमतमाने लगा। मै मन-ही-मन कहने लगी—"हे गोपी-जन-वल्लभ! तुम्हें नमस्कार है।"

डाक्टर साहबकी दृष्टि अत्यंत चंचल हो गई थी। वह कभी बाईं तरफकी युवतियोंको घूर रहे थे, कभी दाहिनी तरफको ताकते थे और कभी पीछेको। मैंने ईर्ष्यासे जलकर धीमे स्वरमें उनके कानके पास जाकर कहा—"क्या तृप्ति नहीं होती?"

चौंककर वह बोले—"ऐं! यह क्या कहती हो! मैं अपने एक 'फ्रेंड'को ढूँढ़ रहा था!"

" पुरुष या स्त्री ! " प्रश्न करते समय मेरी आवाज़ कॉंप गई थी। यह बात शायद डाक्टर साहबके ध्यानमें आ गई। इसलिये उत्तर देते समय वह पल-भरके लिये हिचकिचा गए।

बोले—" ये तो पुरुष ही, पर शायद वहॉं स्त्रीके आकारमें मिल जॉंय, यह दुराशा मेरे मनमें समा रही थी।"

उत्तर देनेका यह ढंग बिलकुल नया था, इसमें संदेह नहीं। पर यह साफ बनावटी था। मैं कुढ़कर, जी मसोसकर रह गई। मनमें कहने लगी—" कौन चुड़ैल इनकी संगिनी है, यह बात अगर मालूम हो जाती तो एक बार कलमुहीको देख लेती कि वह मुझसे कितनी अच्छी दिखलाई देती है। "

५

पर्दा उठा। आरंभमें परियोंका मंगल-गान कोरसमें गाया जाने लगा। अलबेली युवतियॉं नाना रंगोंके मनोहर वस्त्र पहनकर, आभूषणोंसे सज्जित होकर, बालोंको बिखेरकर, पौडरसे रंजित होकर, विद्युत्‌के उज्ज्वल प्रकाशसे प्रदीप्त और प्रफुल्लित होकर, सुकोमल और सुकुमार अंगोंको संचालित कर, कोकिल-कंठोंसे स्वर-लहरी तरंगित कर, दर्शक-मंडलीको मंत्र-मूढ़ करने लगीं। डाक्टर साहब यह दृश्य देखकर, इंद्रपुरीमें भी अप्राप्य मधुर गान सुनकर शायद इस लोकमें नहीं थे। उनका मुग्ध होना तो स्वाभाविक ही था। पर मैं भी इन नवेली परियोंके सुकुमार हृदयोंकी उड़ानसे अनमनी और उदास हो गई। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि मैं युवावस्थामें पदार्पण करनेके पहले ही जवानीकी सभी उमंगें खो चुकी हूँ। आज पहली बार मुझे मालूम हुआ कि जिन उमंगोंके कारण मैं अपनेको युवती समझती थी वे अत्यंत तुच्छ

और अकिंचित्कर हैं। आज मेरी आँखोंके सामने अनत-यौवन-सपन्न परियोंका वास्तविक लोक उद्घाटित हो गया था, और मैं भाई-बहन माता-पिता और डाक्टर साहबकी समस्त चिंताओंको तिलांजलि देकर अकेली उस रग-उमंगमय लोकमें विचरना चाहती थी।

गाना बद हुआ। दुवारा गाए जानेके लिये तालियाँ पड़ीं। फिर वही गीत गाया गया। फिर मेरे मनको उसी पूर्व उन्मादने आ घेरा। मैंने उसी बेहोशीकी हालतमें डाक्टर साहबका हाथ पकड़ लिया। डाक्टर साहब भी शायद अज्ञात ईश्वरीय तरगोंसे प्रेरित होकर इसके लिये पहलेसे ही तैयार थे। उन्होंने प्रतिरोध करके अपना हाथ नहीं छुड़ाया, केवल एक बार सतृष्ण और स्निग्ध आँखोंसे मुझे ताककर उन्होंने अपनी दृष्टि फेर ली।

गाना समाप्त हुआ। उसके समाप्त होते ही मेरा नशा उतर गया। इतना भयकर तूफान मेरे मनमें उठा था, और वह इतनी जल्दी समाप्त हो गया! चैत और वैसाखके महीनेमें अक्सर देखा जाता है कि आँधी और तूफानके भयकर वेगसे आसमानमें प्रलयकर बादल छा जाते है, बिजलीकी कड़कड़ाहटके साथ पृथ्वीको बहा ले जानेवाली धाराएँ बरसने लगती हैं। ऐसा जान पड़ने लगता है कि अब पृथ्वी-सुदरी लाज-शरम सब बिसारकर, अपनी सततिकी माया छोड़कर, उन्मादिनी बनकर अकेली अनतकी ओर बही चली जाती है, अब कभी लौटकर न आवेगी। हाय माता! तुम्हारा स्वप्न, तुम्हारा उन्मादक और उत्तेजक मोह क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है और फिर तुम सतानके पास लौटकर, सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशमें सुमधुर लज्जासे रजित, और सुमद वायुके ताड़-नसे वृक्षके पत्रों द्वारा कपित होकर अपनी पूर्व-उत्तेजनाके कारण सकु-चित हो जाती हो।

ठीक यही हाल मेरा भी था। उस क्षणिक पर भीषण उमगसे उत्तेजित होनेके कारण मैंने डाक्टर साहबका हाथ पकड लिया था। गाना समाप्त होते ही जब नशा उतर गया तो तत्काल मैंने उनका हाथ छोड दिया और लज्जाके कारण धरती फाड़कर उसमें समा जानेकी इच्छा हुई।

खेल आरभ हुआ। उत्तररामचरित खेला जा रहा था। जो युवतियाँ राम और लक्ष्मणका वेप धारणकर रगमचमें विराजमान थीं उनकी नपुसकता देखकर मेरे हृदयमें अश्रद्धा उत्पन्न हो गई। जब राम महाशय अपनी जनानी आवाजसे नखरेके साथ नकियाकर सीताको 'प्रिये' कहकर पुकारते थे, तो मेरा जी घृणासे मचल-मचल उठता था। मैं जानती हूँ कि कई पुरुष ऐसे होते हैं जो स्त्रीका पार्ट बडी सुदरतासे खेल सकते हैं। इसका कारण सभवत यह है कि दु खिनी स्त्रीके उन्नत आदर्शके प्रति पुरुषके हृदयमें विशेष श्रद्धा वर्तमान रहती है। पर पुरुषके उन्नत आदर्शकी कल्पना ही अभी तक स्त्री-जाति ठीक तरहसे नहीं कर पाई है। इसलिये ससारकी कोई भी स्त्री पुरुषका पार्ट खेल सकती है, इस बातपर मैं विश्वास नहीं कर सकती। काकाकी भी यही धारणा थी।

मूल नाटकके खेलमें कोई विशेषता नहीं थी। इसलिये मैं उसे देखकर उकता गई थी। पर बीच-बीचमें विना किसी कारणके परियोंका नाच दिखलाया जा रहा था और नाचके साथ उनका गाना भी चल रहा था। यह दृश्य मेरे लिये अत्यत उत्तेजक और उन्मादक था। परियोंका नाच गान आरभ होते ही मैं बिलकुल बेचैन और आपेसे बाहर हो जा रही थी। कितना ही मैं अपना मन रोकती थी पर किसी तरह भी सफल नहीं होती थी। अतिम बार 'ड्रॉप सीन' गिरनेके पहले जो नाच हुआ वह ऐसा सम्मोहक और आकर्षक था कि मेरी नसोमें बडी तेज़ीसे रक्त प्रवाहित होने लगा और उत्तेजनाके कारण सिरमें झनझनाहट पैदा

हो गई। मैं रह न सकी और अर्द्धमूर्च्छित-सी होकर बेवस डाक्टर साहबके कन्धेके सहारे लेट गई। उस भरी महफिलमें लाज-भरम सब खोकर मैंने अर्द्धचेतन अवस्थामें दोनों हाथोंसे उनका गला जकड़ लिया।

पर्दा गिरा। खेल समाप्त हुआ। डाक्टर साहब मुझे जगाकर बोले—"लज्जा, चलो, सब चलने लगे हैं।"

आज पहली बार उन्होंने मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा था। मैं उनका हाथ पकडकर काँपती हुई उठ खडी हुई। उनका हाथ पकडनेमें मैं अपना गौरव समझने लगी थी।

६

मोटरमें जब चढ बैठी तो उसी उन्मादावस्थामें उन्हें जकड़े रही। मनमें कहने लगी—"प्यारे, मुझे घर मत ले जाओ! सीधे मौतके घर ले चलो। आजसे मेरा घरसे सब सबध टूट गया है। काका, अम्माँ, राजू, लीला, मै किसीके पास अब नहीं जाना चाहती और वे भी अब मुझे नहीं चाहेंगे। आजकी उन्मादिनी रात्रिमें केवल तुम्हारे अगके विद्युत्-स्पर्शसे मूर्च्छित होकर मरनेके लिये ही भगवानने मुझे आदेश दिया है। मुझे मौतकी गोदमें ले जाकर छोड़ दो!"

स्तब्ध रात्रिके उस निर्जन पथमें मौतका बिगुल बजाकर मोटर बड़े वेगसे आगे बढ़ी। उज्ज्वल प्रकाशकी दो सुदूर-प्रसारित रेखाएँ उस मृत्यु-गामी रथको यमलोकका मार्ग दिखला रही थीं। हर्ष उन्माद और तीक्ष्ण वेदनासे पीड़ित होकर मैं डाक्टर साहबकी छातीमें अपना मुँह रखकर बिलख-बिलखकर सिसक-सिसककर बेअख्तियार रोने लगी। डाक्टर साहबका घन-घन उष्ण नि श्वास मेरे सिरके बालोंको आदोलित कर रहा

था। कह नहीं सकती कि शोफ़रको मेरे रोनेका हाल मालूम हुआ या नहीं।

थोडी देरमें मोटर हमारे भवनके फाटकके पास आकर उसीकी ओर मुडी। मै अबतक समझे थी कि सचमुच मौतके ही द्वारकी ओर जा रही हूँ। फाटकके भीतर जब मोटर घुसी तो मेरा मोह भग होने लगा, और प्रचट ऑधीके समय जब नाव मझधारमें बहकर डॉवाडोल होने लगती है, और उस समय दुविधामें पडे यात्रियोंके दिलकी जो हालत होती है वही मेरी भी हुई। उस समय मेरे पास यदि कटारी होती तो मै कसम खाकर कह सकती हूँ कि उसी दम अपनी छातीमें भोंक देती। ऐसे भीषण उन्मादका अतिम परिणाम यह हुआ है कि मै साधारण अवस्थाकी तरह अपने घरको वापस चली आई! चाहिए तो यह था कि इस अँधेरी रातमें मै किसी अँधेरे चट्टानसे टकराकर चकनाचूर हो जाती, किसी अँधेरी, भयावनी गुफामें धँसकर मर जाती, किसी उत्ताल तरग-माला-समाकुल भीषण समुद्रके काले-काले जलमें फाँद पडती, तब जाकर मेरे हृदयकी उत्कट वासना शात होती। पर ऐसा न होकर मुझे नित्यकी तरह शात अवस्थामें अपने कमरेमें जाकर सोनेकी तैयारी करनी पडी! क्या इससे अधिक शोचनीय अवस्थाकी कल्पना भी की जा सकती है?

मेरे कमरेकी वत्ती जली हुई थी। लीला शायद आज अम्मोंके साथ सो रही थी। डाक्टर साहब मेरे कमरेतक मुझे पहुँचाने आए थे। मेरी हालत देखकर वह बहुत घबराए-से जान पडते थे। कमरेमें पहुँचनेपर बोले—"लज्जा, शांत होकर सो जाओ। दिमागमें बहुत 'स्ट्रेन' पडनेसे तुम दुबारा बीमार पड जाओगी और ऐसा होना बहुत खतरनाक है।"

मैंने अपनी उन्माद-भरी दृष्टिसे उनकी ओर ताका। वह अधिक घबरा गए। कुछ देर तक भ्रांत भावसे ताकते रहे, फिर "मैं चला" कहकर मुँह फेरकर चल दिए।

चारों तरफ सब लोग निस्तब्ध होकर सो रहे थे। कहींसे किसीके खकारने या खाँसनेकी आवाज भी नहीं सुनाई देती थी। उस भयंकर रात्रिमें उस अवस्थामें मैं अकेली अपने कमरेमें खड़ी थी। अकस्मात् एक प्रचंड भीतिके भावने मुझे घर दबाया। मेरे पैर उसी हालतमें जमीनपर जकड़ गए और मैं उन्हें बिलकुल न हिला सकी। जोरसे चिल्लानेकी इच्छा हुई, पर किसी कारणसे चिल्ला न सकी। बड़ी मुश्किलसे, प्रबल चेष्टा करके मैं पलँगपर चढ़ बैठी। पलँगपर चढ़नेसे पलँगके दबनेके कारण जो आवाज हुई उससे काँप उठी। भयके कारण मुझे कपड़े बदलकर, सोनेके समयकी पोशाक पहननेकी हिम्मत भी नहीं हुई। उन्हीं कपड़ोंको लेकर कंबल ओढ़कर लेट गई। सिरकी नसें बड़े जोरोंसे झनझना रही थीं, दिल बेतहाशा उछल रहा था।

बहुत देरके बाद जब मेरी अवस्था कुछ शांत हुई तो, न जाने क्यों, मुझे याद आया कि राजू और लीला दस बजे रातसे इस समय तक शांत और निरुद्वेग होकर सोए हुए हैं।

७

दूसरे दिन डाक्टर साहब किसी कारणसे नहीं आए। मैं दिन-भर बड़ी उत्सुकतासे उनकी बाट जोहती रही। आज मुझे उनकी बड़ी आवश्यकता थी। अपने जीवनके प्रथम स्खलनके बाद मैं और किसी दूसरे व्यक्तिके सहारेकी आशा नहीं कर सकती थी। मेरी यह

हीनता केवल उन्हींके साथ मिलकर सुख-दुःखकी बातें करनेसे मिट सकती थी। पर वह किसी तरह नहीं आए। जिनके कारण अपने प्यारे भाईकी आँखोंमें गिरना मैंने स्वीकार किया वह मेरे जीवनकी इस विकट स्थितिमें, इस नाजुक हालतमें क्या मुझे त्याग देना चाहते हैं?—इस भयङ्कर विचारसे मेरे रोंएँ खड़े होने लगे। रातके जागरणसे मेरी आँखें झप रही थीं। मैं पलँगपर लेटे-लेटे बीच-बीचमें झपकियाँ लेती जाती थी और फिर इस आशङ्कासे हड़बड़ाकर उठ बैठती थी कि मुझे सोते देखकर कहीं डाक्टर साहब वापस न चले जायँ। नौकरसे पूछती जाती थी कि डाक्टर साहब आकर चले तो नहीं गए? बार-बार इसी एक प्रश्नसे तंग आकर वह आखिर रह न सका। बोला—"क्यों बीबी, तुम नाहक प्राण खाती हो? अगर आए होते तो क्या हम तुम्हें जगा न देते? हमें मालूम है कि उनके बिना तुम्हारे प्राण कैसे सूखे जाते हैं। रात-भर जागरण किए बैठी हो, बेफिकिर सो क्यों नहीं जातीं। उनकी फिकिर तुम्हारी ही तरह हमें भी लगी है।"

यह नौकर बुड्ढा था और बड़ा पुराना था। उसने मुझे अपनी गोदमें खेला रक्खा था इसलिये उसकी बात सह गई। नहीं तो यदि कोई दूसरा नौकर होता तो उसी दम काकासे कहके उसे निकलवा देती। मेरे कर्मोंका ही दोष था, इसलिये मन मारकर सबकी बोली-ठोली सह लिया करती थी।

मैं सोचने लगी कि डाक्टर साहबसे हेलमेल बढ़ाना ऐसा कौन भारी अपराध है कि उसकी वजह घर-भरके लोग मेरे खिलाफ हो उठे हैं। यह स्पष्ट था कि काका भी इस बातसे विशेष प्रसन्न नहीं थे। यह होनेपर भी उन्होंने मुझे प्यार करना नहीं छोड़ा था। पर राजूने तो एकदम विद्रोहकी ही घोषणा कर दी थी। वह मेरे साथ अब बातें तक न

करता था। उसका यह विद्वेष कैसा अन्यायपूर्ण था! किसी युवती कुमारीका किसी विशेष पुरुषको चाहना बिल्कुल स्वाभाविक है और सामाजिक नियमोंके अनुकूल भी है। यह कौन अंधेरकी बात है! यह भी नहीं कहा जा सकता कि राजू नासमझ और बुद्धिहीन था। उसके समान समझदार और बुद्धिमान व्यक्ति मुझे कोई नहीं दिखलाई दिया था। यही कारण था कि उसका अमूलक और अकारण विद्वेष मुझे और भी अधिक खटक रहा था और मेरे कलेजेको अत्यंत निष्ठुरताके साथ आरीकी तरह चीर रहा था।

"राजू, भैया मेरे, मुझे क्षमा करो! एक प्याला जहरका लाकर मुझे पिला जाओ! मेरी और कोई दूसरी गति नहीं है।" मन-ही-मन यह कहकर मैं पछाड़ खाकर, औंधे होकर तकिएके ऊपर सिर रखकर लेट गई और रोने लगी।

दीनोंकी टेर सुननेवाले दीनदयालु भगवानकी तरह राजूको न माळूम कैसे मेरी टेर सुनाई दी। अचानक मेरे कमरेमें आकर उसने पुकारा—"दीदी!" कैसी मीठी, कैसे मधुर स्नेहसे भरी उसकी आवाज थी! मैं क्षण-भरके लिये पुलकित और रोमाञ्चित होकर मूर्च्छित-सी रह गई। मन ही-मन उसकी बलैया लेती हुई हड़बड़ाकर उठ बैठी। आँखें पोंछकर अनजान-सी बनकर बोली—"कौन? राजू? क्या बात है?"

मेरी आँखोंमें आँसूके दाग शायद अभी तक वैसे ही बने थे। पोंछनेपर भी नहीं मिटे थे। मेरी ओर ताकनेपर राजूकी आँखें भी करुणासे म्लान हो गई।

उसने पूछा—"क्या तबियत कुछ खराब है?"

"नहीं, कुछ खराब नहीं। रातको जगे रहनेके सबब कुछ सुस्ती आ गई थी।"

"तो चलो, कहीं सैरको चले चलें। सब सुस्ती दूर हो जायगी।"

"कहाँ चलोगे ?"

"जिधरको तुम्हारी इच्छा है।"

"मेरी इच्छा किसी खास जगहके लिये नहीं है।"

"तो चौककी तरफ चलें।"

"अच्छी बात है," कहकर मैं चारपाईसे नीचे उतर पडी और दूसरे कमरेमें जाकर कपडे बदलने लगी। कपडे बदलते-बदलते मैं यही सोचने लगी कि आज राजूकी विशेष कृपाका कारण क्या है। मुझे पूरा विश्वास था कि यदि डाक्टर साहब मेरे साथ होते तो वह कदापि मेरे साथ चलनेको राजी न होता। आज डाक्टर साहब नहीं थे, और मैं अकेली थी। शायद इसीलिये मुझपर तरस खाकर वह मुझे बुलाने आया था।

कपडे बदलकर, बाल सँवारकर, सजधजकर मैं बाहर आई। लीला भी चलनेके लिये तैयार होकर बाहर खडी थी।

राजूने कहा—"फिटन तैयार है। उसीमें जाना होगा। मेरी मोटर कोई ले गया है। दूसरी कोई मोटर मुझे पसंद नहीं।"

८

फिटन कपनी बागके रास्तेसे होकर जाने लगी। राजू और मैं अपनी-अपनी चिंताओंमें मग्न थे। हम दोनोंमेंसे किसीके मनमें बातें करनेकी इच्छा उत्पन्न नहीं होती थी। पर लीला बडी चचल और प्रसन्नचित्त लडकी थी। वह बीच-बीचमें अपने उद्भट प्रश्नोंसे हम लोगोंको तग कर रही थी।

जब हम लोग रेलवे लाइनके नीचे, कृत्रिम 'टनेल'के पास पहुँचे तो राजू बोला—"अब तुमसे बात क्या छिपाऊँ, दीदी! मैं तुम दोनोंको अपने एक मित्रके यहाँ लिए जाता हूँ। अपने मित्रकी अम्माँको मैं भी अम्माँ कहता हूँ। वह बहुत दिनोंसे तुम दोनोंको लिवा लानेके लिये ज़िद करती थीं। आज तुम्हें उन्हींके पास लिए चलता हूँ।"

राजूके मित्रके साथ परिचय होनेमें मुझे कोई एतराज़ नहीं था।

हमारी फिटन हैवेट रोडकी तरफ मुडी। कुछ दूर आगे बढ़कर एक मकानके पास राजूने गाडीको रोक लेनेकी आज्ञा दी।

दूकानके लगे-लगे एक तंग फाटक था। हम लोग उसके भीतर घुसे। भीतर मकानके नीचे नालीसे होकर गंदा पानी बह रहा था। बड़ी बदबू आती थी। मैंने रूमालसे नाक ढक ली। मुझे मन-ही-मन बडा आश्चर्य हो रहा था कि राजू हमें कहाँ ले आया है। पर मुझमें उस समय कुछ बोलनेकी शक्ति नहीं थी। मैंने आज अपने जीवनमें पहली बार बाजारके भीतरका मकान देखा था। इसलिये हैरतमें थी।

मकानके सबसे नीचे जो कमरा था उसके पास जाकर राजूने पुकारा—"भोला!"

कोई आवाज़ नहीं सुनाई दी। चारों तरफकी बड़ी-बडी दीवालोंसे मकान ढका था, इसलिये वहाँ प्रकाश अच्छी तरह नहीं प्रवेश कर सकता था। सन्ध्याका समय होनेके कारण इस समय और भी अधिक अँधेरा हो रहा था। बरामदेके भीतर जाकर जब वह उस कमरेके बिल्कुल समीप ही गया तो मालूम हुआ कि वहाँ ताला लगा है।

भोलाके मिलनेकी आशा छोड़कर वह हमें सीढ़ियोंके रास्तेसे होकर ऊपर ले गया। ऊपर दरवाजेके पास पहुँचकर वह पुकारने लगा—"अम्माँ! दीदी!"

भीतरसे युवती-कठकी मीठी आवाज सुनाई दी—"हो । कौन है? राजू ?"

राजू बोला—"हॉ, मैं ही हूँ । किवाड खोलो । "

राजूकी यह आश्चर्यमयी दीदी कैसी है, यह जाननेके लिये उत्सुक होकर मैं अधैर्यके साथ खडी रही ।

खट-से दरवाजा खुला । मैंने देखा कि चौबीस-पच्चीस सालकी एक युवती दाहिने हाथमे प्राय दो सालका एक बच्चा पकडे, लाल रगमें रगे हुए खद्दरकी एक अर्द्ध-मलिन साड़ी पहने, अपनी शात और स्तिमित ऑखोंसे आश्चर्यपूर्वक मुझे और लीलाको ताकती हुई वहॉपर खडी है। उसके मुँहका रग गेहुँआ था—उसमें उज्ज्वलता नहीं पाई जाती थी। पर वह कैसा प्यारा मुँह था !

मैं स्पष्ट देख रही थी कि मेरा और लीलाका ठाठ देखकर वह चकित रह गई थी और शायद इसी कारण उसे हमें भीतर बुलानेकी हिम्मत नहीं होती थी ।

राजूने कहा—"इन दोनोंको देखकर क्या घबरा गई हो दीदी ! चलो, इन्हें भीतर ले चलो ।"

"आओ बहना," कहके उसने पहले मेरा हाथ पकडा और फिर लीलाका । मेरा उत्साह पहले ही ठडा पड़ गया था । अब बिलकुल ही जाता रहा ।

दो अँधेरे कमरे पार करके हम लोग एक तीसरे कमरेमें आए। यह कमरा बाजारकी तरफ था । वहॉ एक अधेड स्त्रीके पास बैठकर दो बच्चे लीलाकी उम्रकी एक लडकीके साथ खेल रहे थे ।

राजूने उस अधेड स्त्रीको प्रणाम किया और कहा—"अम्माँ, आज अपनी बहनोंको आपके दर्शनके लिये ले आया हूँ ।"

राजूकी अम्मोंने कहा—" आओ बेटा, बैठो। बहनोंको ले आए, अच्छा किया। आओ बेटी, सामने आओ, जरा तुम्हारा मुँह तो देखूँ।"

सकोच और घृणासे मेरा सारा शरीर जर्जरित हो रहा था। मुझे राजूपर क्रोध आ रहा था। क्यों वह मुझे सध्याके अधकारमें ऐसे अज्ञात स्थानमें ले आया? मुझे डर मालूम हो रहा था।

फिर भी मैंने मन मारकर राजूकी 'अम्मों'को प्रणाम किया। लीलाने मेरा अनुकरण किया।

"कैसा सुदर चाँद-सा मुखडा है!" कहकर वह बड़े स्नेहसे मेरे गालोंपर हाथ फेरने लगीं। मैं नाक-भौंह सिकोडकर, मन ही-मन मचलकर रह गई। वह बोलीं—"तुम राजूकी ही बहन हो, इसमें सदेह नहीं।"

राजू खिलखिलाकर हँस पडा।

राजूकी 'दीदी'ने लालटेन जलाई। उजाला देखकर बच्चे उछल पडे! इस अधकार घरमें प्रकाशका कितना मूल्य था यह बात मै घरमें प्रवेश करते ही समझ गई थी। 'दीदी'की गोदमें जो दो सालका बच्चा था वह बत्ती जलते ही उसकी तरफ दोनों हाथ जोडकर उमगमें आकर बोला—"जै!" उसे शायद ऐसा करना सिखलाया गया था।

यह सब तो ठीक था, पर मै एक बातके लिये बड़ी दुविधामें पड़ गई थी। उस कमरेमें बैठनेके लिये मुझे कहीं एक कुर्सी भी नहीं दिखलाई दी। नीचे फर्शमें एक मैली दरी बिछी हुई थी और उसके ऊपर दो छोटे-छोटे पुराने कालीन पड़े हुए थे। राजू बड़े आरामके साथ कालीनके ऊपर बैठ गया था। पर मैं नीचे कैसे बैठती! हाय राजू! तुम कबके बैरका बदला लेने मुझे यहाँ ले आए! अपने जीवनमें आज तक मै

कभी फर्शपर नहीं बैठी थी। लीलाका भी यही हाल था। पर वह राजूकी कट्टर भक्त थी। राजूको नीचे बैठे देखकर उसे नीचे बैठनेमें तनिक भी सकोच नहीं हुआ। वह उसीके बगलमें बैठने लगी। पर राजूने न मालूम क्या सोचा, उसे नीचे नहीं बैठने दिया। कमरेके कोनेमे एक चारपाई पडी थी। उसने लीलाका हाथ पकडकर उसीके ऊपर बैठा दिया और मुझसे भी उसीके ऊपर बैठनेको कहा। यद्यपि चारपाईपरका निस्तर साफ सुथरा नहीं था, तथापि फर्शकी अपेक्षा उसीपर बैठना मैंने अच्छा समझा।

लीलाकी उम्रकी जो लडकी वहाँपर बैठी थी, वह चुपके-से भीतर गई और एक पुरानी, टूटी हुई कुर्सी लाकर राजूसे बोली—"भैया, तुम इसपर बैठ जाओ।"

पर राजू वडा जिद्दी आदमी था। फर्शपरसे हटा नहीं।

९

बूढी अम्मोंने मुझसे कहा—"मैं जानती हूँ, बेटी, कि तुम रंग-महलमें रहती हो। भगवानकी दयासे तुम्हारे पास चार पदार्थ मौजूद हैं। सब तरफसे तुम भरी-पूरी हो। पर यह होनेपर भी गरीब लोगोंकी कुटीमें पॉव रखनेसे भगवान कभी तुमसे असतुष्ट नहीं होंगे। दुनियामें बड़े लोग कितने कम होते हैं। सारी सृष्टि दरिद्रोंके ही भारसे दवी हुई है। इस हालतमें तुम कहॉ तक दीन-हीन लोगोंसे बचकर, सँभल-सँभलकर चलोगी? किसी-न-किसी समय उनकी गदगीसे ... वेदाग पॉवोंमें मैल लगता ही। आज श्रीगणेश इसी घरसे हुआ..."

किसी वातको समझानेका यह ढग निल्कुल नया ... सकुचित होकर मै वोली—"नहीं अम्माँ, मैं तो आपके ... सौभाग्य समझती हूँ।"

“ सौभाग्यकी कोई बात नहीं है, बेटी। यह मेरा ही सौभाग्य है कि तुम्हारा चाँद-सा प्यारा मुखड़ा देख पाई हूँ। राजूसे कबसे कहती थी। आज आख़िर यह दोनों बहनोंको ले ही आया।”

हमारे भीतर आनेके समय जो दो छोटे-छोटे बच्चे खेल रहे थे वे राजूकी नई दीदीका अंचल पकड़कर उसीके साथ खड़े थे और आश्चर्य-चकित दृष्टिसे मुझे और लीलाको ताक रहे थे।

राजूने अपने जेबसे विलायती मिठाईकी एक पुड़िया निकालकर दोनोंको अपने पास बुलाया और दोनोंको गोदमें बैठाकर बड़े लाड़से उन्हें अपने ही हाथसे मिठाई खिलाने लगा। पर उन लड़कोंकी विस्मित आँखें हमारी ही ओर लगी थीं। मिठाई खाते-खाते वे दोनों एकटक होकर हम ताक रहे थे।

बड़े लड़केने बड़ी हिम्मत बाँधकर एक बार राजूसे पूछा—“ ये कौन है, भैया ? ”

राजूने कहा—“ दीदी। ”

“ दोनों ? ”

“ हाँ। ”

बूढ़ी अम्माँने कहा—“ दीनू, रामू, जाओ, दोनोंको प्रणाम कर आओ। ”

दोनोंने तत्काल उठकर हमें प्रणाम किया। मै क्या कहकर उन्हें आशीर्वाद दूँ, कुछ समझमें न आया। चाहिए तो यह था कि दोनोंका हाथ पकड़कर मैं उनसे लाड़की दो-चार
दोनोंके प्रति अकारण घृणा पैदा हो गई
था कि राजूने कैसे बिना

लिया था। दोनोंके कपड़े यद्यपि धुले हुए और साफ-सुथरे थे, पर उनमें सौष्ठव नहीं था। दोनोंके चेहरोंसे भी बोदापन टपकता था।

उनके प्रणामके उत्तरमें मै केवल मुस्कुराई। बच्चोंके अंतस्तलमें भी शायद अपमानकी एक अस्फुट, अस्पष्ट, अनुभूति वर्त्तमान रहती है। अपने प्रणामका स्नेहपूर्ण उत्तर न पानेपर दोनो कुछ देर तक खड़े-खड़े अत्यत विरस भावसे हमारी ओर ताकते रहे।

जिस युवतीने दरवाजा खोला था वह अचानक गभीर स्वरमें बोली—" दीनू, रामू, इधर चले आओ ! "

दोनों दौडकर उसके पास चले गए। शायद वह दोनोंकी माँ थी। मैंने उसकी ओर ताका। देखा कि पुत्रोंके अपमानसे माताका अभिमान प्रचड तीव्रताके साथ उसकी ऑखोंमें झलक रहा है। मै डर गई और हौलदिलीके कारण मेरा कलेजा धडकने लगा। मुझे ऐसा मालूम होने लगा जैसे मैंने कोई घोर अनर्थका काम कर डाला है। उस युवतीके मुँहके तात्कालिक तेजसे मेरी ऑंखें वास्तवमें चौंधिया गईं। अब तक उसके मुँहसे एक बात भी नहीं निकली थी। पर इस एक अत्यत तुच्छ और साधारण बातसे उसका सारा अत करण मेरी ऑखोके सामने स्पष्ट प्रभासित होने लगा। मैं उसी दम समझ गई कि राजू क्यों इस तेजोमयी माताके पुत्रोंको प्यार करता है और अपने हृदयकी सकीर्णतापर मुझे दु ख हुआ। पर यह होनेपर भी दरिद्र घरकी इस युवतीका वह दर्प मुझे अत्यत असह्य और कडवा जान पड़ा।

राजूको भी शायद रगढग अच्छे नहीं दिखलाई दिए। इसलिये उसने बूढ़ी अम्माँकी ओर मुँह करके कहा—" अच्छा अम्माँ, अब चलें। भोला अभी तक नहीं आया, उससे कल मिल लूँगा। "

अम्मोंने कहा—"क्या करूँ बेटा, लाचार हूँ। तुम्हारी बहनोंको यहाँ बुलाया, पर उन्हें कुछ भी खिला पिला न सकी। इस दरिद्र घरकी बनी हुई क्या चीज उन्हें पसद आ सकती है! इसलिये कुछ कह न सकी।"

"वाह, यह भी कोई वात है अम्मों! तुम्हारे हाथका प्रसाद ये दोनों कहाँ पा सकतीं हैं? मै तो रोज ही तुम्हारा प्रसाद पाकर अपनेको धन्य समझता हूँ। पर आज देर हो गई है। फिर किसी दिन इन्हें लेता आऊँगा।"

"जरूर लेते आना, बबुआ!" कहकर अम्मोंने उसके गालोंपर हाथ फेरा और लीलाके और मेरे सिरपर हाथ रखकर हमें आशीर्वाद दिया।

जब हम लोग जाने लगे तो बच्चोंकी माता—राजूकी दीदी—उस तेजस्विनी युवतीने मेरा हाथ पकडकर मुझसे कहा—"यहाँ आनेपर तुम्हें जो कुछ कष्ट हुआ उसे भूल जाना बहन!" इस समय कैसा स्निग्ध और करुण उसका कठ था! मुझसे कुछ कहते न बन पडा। पर चुप रहना घोर नीचता है, यह सोचकर मैं बोली—"कष्ट किस बातका दीदी! तुम लोगोंका प्यार पाकर मैं अपनेको आज कृतार्थ समझती हूँ।"

जो लडकी लीलाकी समवयस्का थी वह लालटेन हाथमें पकडकर हमें रास्ता दिखाने चली। सीढियोंसे नीचे उतरकर जब हम लोग बाहर फाटकके पास पहुँचे तो वह अपने मुँहमें अत्यत मधुर हास्यकी झलक दिखलाकर बड़े मीठे स्वरमें स्नेहपूर्वक बोली—"राजू भैया, कल तुम्हें जरूर आना होगा।"

उसकी बातसे ऐसा जान पडा कि राजूपर उसका विशेष अधिकार है। तेरह-चौदह वर्षकी लड़कीके मुँहसे स्नेहसे पूर्ण और अधिकारसे भरी

वह वाणी सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गई। इस समय तक मैं उसके प्रति उदासीन थी। पर अब मैंने लालटेनके प्रकाशमें गौरसे उसे देखा। उसकी दो सुदर, उज्ज्वल ऑंखोंमें स्नेह, करुणा, हास्य और बुद्धिमत्ताका अपूर्व मिश्रण वर्तमान था।

राजूने कहा—" जरूर आऊँगा, बहना! अब तुम लौट जाओ।"

१०

घर पहुँचने तक रास्ते-भर मै केवल यही सोचती रही कि राजूने ससारके नाटकका कैसा अनोखा दृश्य आज मुझे दिखलाया है। कभी मेरे मनमे घृणा उत्पन्न होती थी, कभी एक अपूर्व, अज्ञात चेतना। बूढी अम्माँने कहा था कि संसारमें 'बडे लोग' बहुत कम होते है—सारी सृष्टि केवल उन्हीं लोगोंके समान दरिद्रोंके भारसे दबी है। मैंने सोचा कि यदि यह बात सच है तो ससारसे मेरा परिचय कितना अल्प है! पर कुछ भी हो, राजूने क्या समझकर इस दरिद्र परिवारसे नाता जोडा है? वह क्या अपने जीवनमें किसी 'रोमेंस' की इच्छा रखता है, या वास्तवमें दरिद्रताको अपनाना चाहता है? मुझे याद आया कि वह बिना किसी झिझकके नीचे फर्शपर बैठ गया था और उसने बडे लाडसे दोनों बच्चोंको गोदमें बैठा लिया था। यह तो किसी तरह भी 'रोमेंस'-प्रिय व्यक्तिकी खामखयाली नहीं कही जा सकती। उन लोगोंके साथ बिना एकप्राण हुए कोई ऐसा नहीं कर सकता। भोगैश्वर्यसे पूर्ण घरमें लालित होकर, रात-दिन विलासिताकी तडक-भडकमें अपना जीवन बिताकर वह कैसे अपने हृदयमें बद्ध सस्कारोंको उखाडकर फेंकनेमें समर्थ हुआ! और वह भी इतनी छोटी अवस्थामें! उसकी अवस्था इस समय केवल सत्रह वर्षकी थी। दुःख, आश्चर्य,

घृणा और श्रद्धाके भाव बारी-बारीसे मेरे हृदयमें उमडने लगे। आज मै समझ गई हूँ कि भगवानके दिए हुए विपुल जीवनकी स्वाभाविक वृत्तियोंका असली खेल दरिद्र गृहोंमें ही पाया जा सकता है। धनी और सभ्य समाजका तुच्छ शिष्टाचारपूर्ण जीवन कुछ निश्चित रेखाओंके भीतर नियम-बद्ध होकर चला करता है। इस जीवनके सुख-दुःख भी 'टाइम-टेबिल'में लिखे हुए, सुनिश्चित, नियमित और सीमा-बद्ध होते है। पर दरिद्र गृहका जीवन अनेकानेक उलटे-सीधे चक्रोंके फेरसे सुविस्तृत, प्रकृतिकी मूल शक्तिद्वारा परिचालित, आत्माके भीतरी पीडनद्वारा निर्झरकी तरह उत्साहित और शात करुणा तथा स्निग्ध वेदनासे ओसकी बूँदोंको झलकानेवाली विजन निशाकी तरह उन्मुक्त होता है। अनेक जन्मोंके सस्कारोंसे राजू इसी प्रकारके वास्तविक जीवनके लिये लालायित था। यह बात आज मुझे स्पष्ट विदित हो रही है। पर उस समय मै उस जीवनका महत्त्व बहुत कम समझे हुए थी। इसलिये राजूकी ग्राम-ग्रयालीसे सतुष्ट नहीं थी।

पर लालटेनसे हमें रास्ता दिखानेवाली वह प्यारी लड़की! राजू उसे किस दृष्टिसे देखता है? यह नई भावना मेरे मनमें समाई। मै जानती थी कि मेरी सगिनी और सहपाठिनी जितनी भी लडकियोंसे उसका परिचय था उनके साथ वह अच्छी तरहसे बातें तक न करता था। पर इस दीन-हीन लडकीका उसपर इतना अधिकार कैसे हो गया! यह कितने आश्चर्यकी बात थी, इसे केवल मै ही समझ सकती हूँ।

और मातृगर्वसे गभीर, सतानकी वेदनासे परिक्लान्त वह तेजोमयी युवती! सत्रह वर्षकी अवस्थामें राजू उसके हृदयकी महत्तासे परिचित हो गया था और सतानका स्नेह भी इस छोटी अवस्थामें उसके हृदयमें

अस्फुट रूपसे परिस्फुट होने लगा था। अन्यथा क्यों वह इस युवती माताके हृदयकी वेदनाको अपनी श्रद्धाजलि प्रदान कर रहा था! पर मैं यद्यपि स्त्री थी, तथापि उन छोटे-छोटे बच्चोंको देखकर मेरे हृदयमें नामको भी चेतना उत्पन्न नहीं हुई। यह कितने बड़े आश्चर्यकी बात थी! 'सेल्यूलाइड' या गटा पार्चाकी बनी हुई एक खूबसूरत गुडियाको मैं जी-जानसे प्यार कर सकती थी, पर दरिद्रकी सतान उन दो बच्चोंके लिये मेरे मनमें असह्य घृणाका भाव उत्पन्न हो रहा था। एक ही ढगसे, एक ही घरमें पले हुए हम दो भाई-बहनमें इतना बडा प्रभेद था।

आजका अद्भुत दृश्य देखकर मै अपने सीमाबद्ध हृदयकी दुर्बलताओं-पर अच्छी तरहसे विचार करना चाहती थी, पर प्रबल चेष्टा करनेपर भी अपने अतस्तलकी मूलगत जडताके कारण या अन्य किसी कारणसे उन्हीं दुर्बलताओंको हृदयमें इस तरह जकडे रहनेकी इच्छा होती थी मानो वे मेरी जन्म-जन्मकी प्यारी सहचरियाँ थीं।

सोचते सोचते मै उकता गई और दिमागमें जोर पडनेके कारण सिरमें दर्द होने लगा। गाडीके घोड़े बड़ी तेजीसे दौड रहे थे। एक लबी सॉस लेकर मैने लीलाके मुँहपर दृष्टि डाली। कैसा भावहीन, अनु-भूतिहीन, चितारहित, आमोद-प्रिय वह मुँह था! जिस बालिकाने अपना स्नेहाधिकार प्रकट करके राजूसे कहा था कि कल तुम्हें जरूर आना होगा, उसके हृदयकी सयत तीव्रतासे क्या इस सरल-प्रकृति और चोदी लड़कीके निस्तेज चाचल्यकी कुछ भी तुलना हो सकती थी? मैं मनमें कहने लगी—"हाय प्यारी बहन! राजू हम दोनों बहनोंको कर्त्तव्यके काँटोंसे कँटकित जिस गहन मार्गकी ओर ढकेलना चाहता है उसमें चलनेका साहस और शक्ति हम कहाँसे लावें!"

११

घर आकर जब मैंने विलासिताके नाना उपकरणोंसे सुसज्जित अपने कमरेमें प्रवेश किया तो ऐसा जान पड़ा जैसे किसी अपरिचित दूरस्थित देशसे लौटकर मैं अपनी दुनियामें आ गई हूँ। दरिद्रता, दुःख और शोककी जो अप्रिय भावना मेरे मनमें गड़ गई थी वह किसी मायाके बलसे तिरोहित हो गई और काल्पनिक आनंदकी नई नई उमगें मेरे मनमें हिलोरें लेने लगीं। नाटकके खेलके समय और उसके बाद जिस अनोखे नशेने मुझे धर दबाया था उसकी मधुर और उत्तेजक स्मृति फिर धीरे-धीरे जागरित होने लगी। फिर-से डाक्टर साहबकी रसी-ली, मद-भरी आँखें मेरे मानसमे झिलमिलाने लगीं। मैं अपनी कल्पना और वासनासे स्वयं झूमने लगी और मद-विह्वल होकर मधुर मूर्च्छाके विलाससे पलँगपर लेट गई। आँखें बंद करके अर्थहीन स्वप्नोंकी तरंगोंमें बहने लगी।

अचानक बाहर दरवाज़ेसे जादूसे भरा हुआ वही चिर-परिचित कंठ सुनाई दिया—"क्या मुझे भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा है?"

भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा? प्राणप्यारे! तुम्हें क्या खबर नहीं कि मेरे भीतर तुम कबसे प्रवेश किए, अधिकार जमाए बैठे हो! एक पलके लिये भी मैं तुम्हें हटने नहीं देती। जान-बूझकर फिर क्यों अनजान बनते हो?

मैं उठ बैठी और बोली—"आइए कृपानिधान! तशरीफ लाइए! यह नया ढंग कबसे सीखा है?"

मादक स्वप्नोंके रंगसे रँगे हुए मेरे मुखमें शायद आज कुछ विशेषता थी। डाक्टर साहब जब भीतर आए तो मुझे देखकर उनका चेहरा भी तमतमाने लगा।

जब वह बैठ गए तो मैंने कहा—" आज यह देर कैसी!"

बोले—" आज कई मरीजोंको देखना था। अभी जिस मरीजको देखकर मैं आ रहा हूँ उसकी हालत ऐसी खराब है कि बिल्कुल 'हॉरिबल' समझिए। मै तुमसे उसका कुछ वर्णन नहीं कर सकता। तमाम बदनमें फोड़े हो गए हैं, चेहरा इतना सुस्त हो गया है कि मासका कहीं पता नहीं चलता, फोड़ोंसे मवाद निकलता जाता है जिसके सबब बदबूसे वहाँपर मिनट भर नहीं रहा जाता, इधर-उधर करवटें नहीं बदल सकता, मलमूत्रके लिये उठ नहीं सकता, तिसपर मजा यह कि वह खानेके लिये रुचि बतलाता है, पर हजम नहीं कर सकता। घरवाले उसकी टहल करते-करते अब थककर उकता गए है। सब मनमें यही सोच रहे हैं कि उसके प्राण-पँखेरू उड जायें तो तकलीफसे बचे। पर यह बात कोई मुहसे नहीं निकाल सकता। मेरी समझमें नहीं आता कि उसके लिये क्या उपाय किया जाय। ऐसी हालतमें कोई दवा क्या असर कर सकती है। उसका कराहना ऐसा भयकर मालूम होता है कि आतक छा जाता है। उचित तो यह होता कि जहर देकर वह मार डाला जाता। पर मनमें झिझक पैदा होती है। तुम्हारी क्या राय है ?"

मेरी राय ? वर्णन सुनकर मेरे रोंगटे खडे हो गए थे। इस हालतमें मैं राय क्या देती! तत्काल मेरे मनमें यह आशका उत्पन्न हुई कि सब मनुष्योंके शरीरकी बनावट तो एक-सी ही होती है। जब किसी कारणसे इसी व्यक्तिकी तरह मुझे भी यही रोग हो गया तब मेरी क्या गति होगी? इस समय तो मैं अपने रूपके घमडके मारे जमीनपर पाँव नहीं रखती। सर्वांगमें एसेंस छिडककर सोनेमें सुगध उत्पन्न कर रही हूँ। जवानीकी उमंगमें आकर पुरुषोंको अपने वशमें करनेका भी दावा रखती हूँ। पर

जब, ईश्वर न करे, ...

मवाद निकलनेके ...

निरतिशय पीड़ामें मैं ...

भगवान! मनुष्यका ...

सुंदर बनाया था तो ...

करता है?

सोचते-सोचते मेरा ...

अनुभव करने लगी जैसे ...

उत्पन्न होने लगे हैं। ...

लोमहर्षक वर्णन आपने सुना ...

है। कहीं मुझे भी यह ...

मेरी बात सुनकर ...

मेरा भय कुछ दूर हुआ। मैं ...

मुस्कुराने लगी। ...

मैंने कहा—" ...

खराब है। जरा मेरी नाड़ी ...

रही है।" यह कहकर ...

डाक्टर साहबके ...

सकती। पर उन्होंने ...

पकड़ लिया और ...

शरीरमें रोमहर्ष और ...

स्थानपर अपनी ...

में 'टाइम' देखने ...

मिनट-भर देखकर बोले—" आपका 'पल्स-बीट' बिलकुल 'नॉर्मल' है। कह नहीं सकता कि किस वजहसे तुम्हारी तबियत खराब हो गई।"

मैंने कहा—" क्या बतलाऊँ डाक्टर साहब, मै भी ठीक-ठीक नहीं बतला सकती कि कैसे मेरी तबियत खराब हो गई।"

राजूने आकर बडे जोरसे व्यंगके रूपमें कहा—" आदाबअर्ज, डाक्टर साहब! मिजाज-शरीफ ?"

मैंने सोचा कि यदि नाडी देखनेके समय राजू आया होता तो कैसा अंधेर न हो गया होता! फिर सोचा—" राजू क्या हररोज हम दोनोंकी घातमें बैठा रहता है ? ठीक नियत समयपर क्यों मेरे कमरेमें पहुँच जाता है ?"

डाक्टर साहबने उत्तर दिया—" अरे साहब, मिजाज-शरीफके बाबत कुछ पूछिए मत। कल लडकियोंका जो नाटक देखा, उसके कारण मिजाजकी हालत कुछ अजीब हो गई है।"

" क्यों साहब, हुआ क्या ?"

" क्या बतलाऊँ, नाजनीन परियोंका नजाकतसे भरा हुआ नाच देखकर और दिलको लुभानेवाला गाना सुनकर मैं कल रातसे आपेमें नहीं हूँ। तुमने ऐसा अच्छा मौका हाथसे जाने दिया।"

मैंने साफ देखा कि असह्य लज्जासे राजूका सारा मुँह रँग गया। बहनके सामने भाईसे इस तरहकी बातें करना मार्जित रुचिके कितने विरुद्ध था, यह मोटी बात डाक्टर साहबकी बुद्धिमें नहीं समाई। और यह भाई भी राजूकी प्रकृतिका! क्रोध और भयके कारण मेरा दिल जोरोंसे धड़कने लगा।

नौकरने आकर कहा—" खाना तैयार है।"

हम लोग इस विकट सकटमय स्थितिसे बच गए। मैंने कहा—"चलिए डाक्टर साहब, आज आपको हमारे ही साथ खाना होगा।"

बिना किसी एतराज़के वह बोले—"अच्छी बात है।"

१२

डाइनिंग टेबिलमें अम्माँ और काका हमारे इंतज़ारमें बैठे थे। डाक्टर साहबको देखकर अम्माँ उछल पड़ीं। पारस्परिक अभिवादनके बाद अम्माँने कहा—"आज बहुत दिनोंके बाद आपके साथ खानेका सुअवसर प्राप्त हुआ।" सभ्य लोगोंके साथ बोलनेमें अम्माँ शुद्ध संस्कृतके शब्दोंका प्रयोग करना पसद करती थीं, यद्यपि उन्हें संस्कृतका बिलकुल भी बोध नहीं था।

राजू हमारे साथ नहीं आया था। नौकरके आनेपर काकाने कहा—"रजनको बुलाओ।"

नौकरके चले जानेपर काकाने डाक्टर साहबसे पूछा—"कहिए, कल रातका 'प्ले' कैसा रहा? आपके पसद आया या नहीं?"

उत्तरमें डाक्टर साहब मधुर लाजके साथ मुस्कुराए, फिर बोले—"साहब, सच बात तो यह है कि लड़कियाँ बिना लड़कोंकी सहायताके ऐसे कामोंमें कभी सफल नहीं हो सकतीं। हाँ, एक बात वहाँ ज़रूर देखने लायक थी। लड़कोंको स्त्रियोंका पार्ट खेलते मैंने अक्सर देखा है। पर कल जब मैंने लड़कियोंको पुरुषोंका पार्ट खेलते देखा तो यह नई बात मुझे बहुत पसद आई। लड़कियोंकी यह चेष्टा सराहनीय थी।"

काका बोल उठे—"हॉरिबुल!"

हम सब चौंक पड़े।

डाक्टर साहबने पूछा—"क्यों साहब ?"

"जो लड़की मर्द बनकर स्टेजपर खडी हो सकती है, वह क्या नहीं कर सकती। का न करइ अबला प्रबल ?"

मुझे और अम्मांको हँसी आ गई, पर डाक्टर साहबका मुँह गम्भीर हो आया। बोले—"आपका यह 'सेंटिमेंट' न्यायसगत नहीं कहा जा सकता। जब लडके स्त्रियोंका पार्ट खेल सकते हैं तो लड़कियोंको क्या पुरुषोंका पार्ट खेलनेका अधिकार नहीं है ? क्यों इसे आप इतना भारी अपराध समझते हैं ?"

काकाका स्वभाव था कि वह अपनी किसी भी बातका विरोध नहीं सह सकते थे। अपनी हठ और अकड़बाजीके लिये वह प्रसिद्ध थे। उनकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। शेरकी तरह गरजकर बोले—"सेंटिमेंट ? आप सेंटिमेंटको क्यों इतना महत्त्वहीन समझते हैं ? युक्ति ही क्या ससारमें सब कुछ है ? आपको खबर नहीं कि सेंटिमेंटके ही आधारपर सारी सृष्टि स्थित है। युक्तिसे साख्यिक लोग यह सिद्ध कर दिखाते हैं कि नारी केवल अस्थि, मास, मेद, मज्जा और रक्तकी समष्टि है, तब फिर क्यों लोग उसके वशीभूत होते हैं ? कारण स्पष्ट ही यह है कि पुरुष अपने हृदयमें किसी सेंटिमेंटकी प्रेरणासे नारीके आत्मिक चैतन्यका अनुभव करता है—वह युक्तिद्वारा उसके शरीरके प्रत्येक अवयवका विश्लेषण नहीं करना चाहता। यही बात दूसरे सेंटिमेंटोंके सबधमें भी कही जा सकती है। शील, सभ्रम, लज्जा, गाभीर्य—ये स्त्रीके प्रधान गुण माने जाते हैं। सिर्फ हमारे ही देशमें नहीं, ससारके सभी सभ्य देशोंका यह हाल है। इन्हीं गुणोंके कारण पुरुष स्त्रीका कायल है। थिओरीमें स्त्री भले ही पुरुषको देवता माने, पर उसके देवत्वकी

वास्तविक कल्पना ही वह नहीं कर सकती—क्यों नहीं कर सकती, इस बातपर मैं इस समय बहस नहीं करना चाहता। पर पुरुषके हृदयमें स्त्रीके देवीत्वका आदर्श अच्छी तरहसे जम गया है, इसलिये वह चाहे स्त्रीके ऊपर कैसा ही भयकर अत्याचार करे, पर फिर भी स्त्रीत्वके प्रति उसके हृदयमें अकपट भक्ति और प्रगाढ़ श्रद्धा पाई जाती है। जिन गुणोंके कारण वह स्त्रीके देवीत्वका क़ायल है, पुरुषका अनुकरण करते ही उनका लोप हो जाता है। इसी लिये मैं कहता था कि जो स्त्री मर्द बनकर स्टेजपर खड़ी हो सकती है और इस बातपर अपना गौरव समझती है, उसमें स्त्रीका सर्वश्रेष्ठ गुण—मातृहृदयका सुमधुर, सरस गाम्भीर्य—कभी नहीं पनप सकता। इसी तरह राजनीतिक या सामाजिक स्टेजोंपर मर्दोंकी करतूत दिखलानेवाली स्त्री भी माता बननेके योग्य नहीं है।"

अंतिम आक्षेप स्पष्ट ही अम्मांके प्रति था। काकाकी उत्तेजना देखकर और उनकी चुभती हुई बातें सुनकर हम लोग सन्न सन्न रह गए। अम्माँ यद्यपि स्पष्टत अपनेको अपमानित समझ रही थीं, तथापि काकाका रुख देखकर कुछ उत्तर देनेका साहस उन्हें नहीं होता था। डाक्टर साहब भी घबराए हुए जान पड़ते थे। आतरिक दु खसे काकाने ये सब बातें कही थीं, इसलिये तर्कद्वारा उनका निरोध करनेकी शक्ति किसीमें नहीं थी।

नौकरने कहा—"छोटे बाबू तबियत खराब बतलाते है—खानेको नहीं आना चाहते।"

वाद-विवादमें पड़े रहनेके कारण राजूका खयाल ही किसीको नहीं था। नौकर शायद जवाब लाकर कुछ देरसे खड़ा था। इस समय मौका पाकर उसने राजूकी याद दिलाई। मैं तत्काल समझ गई कि डाक्टर

साहबको भोजनके लिये आमन्त्रित करनेके कारण ही वह रुष्ट हो गया है और तबियतका खराब होना केवल एक बहाना है।

अम्माँ और काका बड़े चिंतित हुए। काकाने कहा—"तबियत ख़राब है! बात क्या है? कुछ भी हो, डाक्टर साहब यहाँ मौजूद हैं। चलिए डाक्टर साहब, जरा उसे देख तो लीजिए।" यह कहकर काका उठनेको तैयार हुए।

डाक्टर साहबने कहा—"बात कुछ समझमें नहीं आती। अभी तक तो वह मेरे साथ बातें कर रहे थे। मुझसे उन्होंने कुछ नहीं कहा।"

इतनेमें राजू वहाँ स्वयं आ पहुँचा और बोला—"मैं पेटमें कुछ दर्द-सा मालूम कर रहा हूँ, इसलिये इस वक्त खाना नहीं चाहता। आप लोग खाइए। मेरी चिंता न कीजिए।"

यह कहकर वह उल्टे पाँव लौट चला। डाक्टर साहब भी शायद अब उसके बहानेका कारण थोड़ा-बहुत समझ गए थे। इसलिये मुस्कुराते हुए काकासे बोले—"इन्हें सोनेके पहले गरम पानीके साथ एक गोली हिंगाष्टक चूर्णकी दीजिएगा।"

हम सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। काकाने कहा—"वाह साहब, वाह! खूब! आप तो आयुर्वेदमें भी पारगत हो गए हैं। विलायती दवाका पानी छोड़कर आप हिंगाष्टक प्रेस्क्राइब करने लगे। खूब!"

"इनका मर्ज़ भी तो साहब, देसी है। जरा-जरा-सी बातमें इनका मिज़ाज बिगड जाता है, और मिज़ाज बिगडनेसे पेटमें दर्द होगा, यह तो मानी हुई बात है।"

डाक्टर साहबका यह आक्षेप अत्यंत रूक्ष था। कह नहीं सकती कि राजूके कानोंमें यह बात गई या नहीं। पर यह मेरे कानोंमें भी खटकने लगी।

१२

कुछ भी हो, राजूकी मानसिक प्रवृत्ति देखकर मैं हैरान थी। मै सोचने लगी—"क्यों वह डाक्टर साहबको देखकर इस क़दर जलता है ?" उसका आजका व्यवहार किसी तरह सभ्य और सुशिष्ट नहीं कहा जा सकता था। मेरे मनमें विद्रोहका भाव समा गया। अपने सनकी और युक्तिहीन भाईपर बड़ा क्रोध आया। मैंने सोचा—"पर्दानशीन औरतोंको पर-पुरुषोंके साथ बातें करनेका अधिकार नहीं होता। इस सत्यनाशी प्रथाके विरुद्ध अब देश-भरमें आंदोलन मच रहा है। पर हमारे घरमें स्त्री-स्वाधीनता पूर्णरूपमें वर्त्तमान होनेपर भी राजूको यह बात बेतरह अखरती है कि मैं डाक्टर साहबके साथ बेधड़क बातें करती हूं। यह कैसा अन्याय है! नहीं, इस अन्यायका विरोध करना ही होगा। राजूका लिहाज करने और उससे डरनेसे काम नहीं चलेगा!" सोचते-सोचते क्रोधके कारण मेरा खून खौलने लगा। मैं दाँतोंको पीसकर रह गई।

खा-पीकर मै डाक्टर साहबके साथ अपने कमरेमें आई। डाक्टर साहबने प्रस्ताव किया कि आज पैलेस थिएटरमें एक बिलकुल नया और सनसनी फैलानेवाला फिल्म दिखाया जा रहा है, वहाँ चलना चाहिए।

मैं राजूके अन्यायका बदला लेना चाहती थी। इस लिये प्रतिहिंसाके भावसे प्रेरित होकर तत्काल सम्मत हो गई। जिस तरहसे राजू अधिक-अधिक जले, अब मैं वही उपाय चाहती थी। बिना किसीकी आज्ञा लिए, गुप्त रूपसे शोफरको सूचित करके हम दोनों निकल पड़े। मैं बाहरसे गरम कोट पहन लाई थी और गलेमें मुलायम पशम भी डाल लाई थी। पर फिर भी जाड़ेसे शरीर काँप रहा था। कह नहीं सकती

कि मेरा जाड़ा कितना कल्पित था और कितना वास्तविक। आज मैंने जो असीम दुस्साहसका काम किया थाँ, उसके कारण भी शायद सर्वांगमें कँपकँपी मालूम होती थी। कुछ भी हो, मैं मोटरमें बैठे-बैठे डाक्टर साहबके कंधेपर हाथ डालकर उनके गलेसे लिपट गई। अभिसारकी इस निस्तब्ध, अंधकारमयी रात्रिमें मेरा प्रेमिक मुझे बिना ढूँढ़े मिल गया था, उसे मैं कैसे छोड सकती थी?

बहुत देर तक हम दोनों मन्त्र-विह्वलकी तरह स्तब्ध होकर बैठे रहे। अचानक डाक्टर साहबने अत्यंत धीमे स्वरसे मेरे कानमें कहा—"लज्जा, क्या सिनेमामें जाना जरूरी है?"

"तब कहाँ जाओगे?"

प्रश्न करते समय मेरा कलेजा धड़क रहा था।

डाक्टर साहब बोले—"चलो, लौट चलें।"

मैं गुस्सेसे काँपने लगी। बोली—"तब क्यों मुझे इतनी दूर लाए?"

"अच्छा सिनेमामें नहीं, किसी दूसरी जगह चलें?"

"कहाँ?"

डाक्टर साहब जरा हिचकिचाए। उनकी हिचकिचाहट देखकर मैं किसी अज्ञात आशंकासे सिहर गई। मेरे दिलकी धड़कन बढ़ने लगी। कुछ देर बाद वह बोले—"अच्छा चलो, सिनेमामें ही चलें।"

डाक्टर साहबकी इन संशय और द्विविधासे भरी बातोंको सुनकर मैं बेतरह घबरा गई और डरके कारण मैंने और भी ज्यादा मजबूतीसे उन्हें जकड़ लिया।

सिनेमा हॉलमें पहुँचनेपर विद्युदीप्त प्रकाशसे मेरा भय कुछ दूर हुआ। रामूको मेरे प्रणय-पलायनका समाचार विदित हुआ या नहीं, यह बात

सोच-सोचकर मेरे शरीरमें लोमहर्ष उत्पन्न हो रहा था—कह नहीं सकती कि यह लोमहर्ष भयके कारण था या प्रतिहिंसा-जनित आनदके कारण। पर फिर भी राजूके दिलकी जलनकी कल्पनासे मेरे दिलकी हालत अजीब होती जाती थी। भाईके प्रति ऐसी उत्कट प्रतिहिंसाका भाव किसी बहनके हृदयमें कभी उत्पन्न हुआ है या नहीं, मैं नहीं जानती। मैंने अपने मनमें कहा—"विवाह होनेके बाद यदि मैं किसी पर-पुरुषके प्रति आसक्त होती तो राजूका यह दुर्भाव मैं किसी तरह सह लेती। पर अविवाहित अवस्थामें जब मैं किसी पुरुषको चाहती हूँ—" मैं अधिक सोच न सकी। फिर एक बार कुढ़कर दाँतोंको पीसकर रह गई।

पर मेरे विवाहके सबधमें काका और अम्माँके मनमें क्यों चिन्ता उत्पन्न नहीं होती, यह सोचकर मैं हैरान थी। इसमें सदेह नहीं कि मुझे अब अपने विवाहके सबधमें कोई चिन्ता नहीं थी। क्योंकि मैंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया था कि विवाह करूँगी तो डाक्टर साहबके ही साथ करूँगी, नहीं तो विष पीकर मर जाऊँगी। पर काका और अम्माँ क्या सोच रहे थे? वे क्या मेरे मनकी हालतसे परिचित नहीं थे? यह हो नहीं सकता था। मेरी मानसिक स्थिति स्पष्ट थी। वह किसीसे छिपी नहीं रह सकती थी। पर क्या वे मेरे इस प्रणयका अनुमोदन करते थे? मुझे इस सबधमें केवल अम्माँका भरोसा था। क्योंकि मैं जानती थी कि वह डाक्टर साहबको स्नेहकी दृष्टिसे देखती हैं। और काका चाहे डाक्टर साहबको न चाहें, पर अम्माँके और मेरे एकमत होनेसे वह कभी बीचमें विघ्न नहीं डालेंगे, यह बात भी मैं अच्छी तरहसे जानती थी। क्योंकि मुझे मालूम था कि वह कभी किसीकी मानसिक स्वाधीनतामें दबाव डालना पसद नहीं करते थे। पर राजू? वह चाहे प्रत्यक्षमें इस कार्यमें

बाधा न डाले, पर उसका दुर्भाव मैं जीवन-भर कैसे सहन करूँगी ?
फिर उसी अप्रिय भावनासे मेरे दिलमें जलन पैदा होने लगी और मुझे
आकाशको फाड़ने और धरतीको चीरनेकी इच्छा हुई।

१४

चित्र-लीला आरंभ हो गई थी। अमेरिकन फिल्म था। डाक्टर साहबने कहा था कि सनसनी पैदा करनेवाला फिल्म है। पर मैं सब फिल्मोंको एक-सा समझती हूँ। युवक-युवतियोंका वही बाधा-हीन स्वच्छंद विलास, प्रेमका वही आलस्य और अफ़ीमका-सा नशा, पाश्चात्य-जीवनकी वही उन्मत्त लास्य-लीला। नित्य यही सब बातें देखनेमें आती थीं। पर आज इस उद्दाम, चंचल प्रेमके उन्मुक्त, बंधनहीन प्रवाहमें सशयहीन होकर बह जानेकी उत्कट इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई। मैंने सोचा—"अगर मेरा जन्म योरप या अमेरिकामें होता तो क्या वहाँ मेरा भाई कभी मेरे स्वच्छंद प्रेममें बाधा पहुँचाता ?"

तमाशा खतम होने पर जब हम दोनों लौट चले तो मेरा चित्त जड़ता और अवसादसे आच्छन्न हो गया था। घर पहुँचने पर मैंने डाक्टर साहबसे कहा—"आज आपको यहीं रहना होगा। मुझे अकेले डर लगता है। परसों तक लीला मेरे साथ सोती थी, पर आज कोई नहीं है। आजकी रात हम दोनोंको जागरणमें बितानी होगी। गप मारते हुए बैठे रहना होगा।"

पर पिछली रात नाटक देखनेमें जगे रहनेके कारण मेरी आँखोंमें नींदका बड़ा प्रकोप हो रहा था और आँखें झपती जाती थीं।

डाक्टर साहब बोले—"कल रातके जागरणसे तुम्हारी आँखें लाल हो गई हैं और झप रही हैं। अगर आज रात भी जगे रहना होगा तो बड़ी आफ़त होगी।"

मैं बच्चोंकी तरह जिद करते हुए बोली—" नहीं, मुझे डर लगता है, मैं किसी तरह यहाँ अकेली नहीं रह सकती।"

डाक्टर साहबने कहा—" अच्छी बात है। मुझे कोई उज्र नहीं। मैं तुम्हारे ही लिये कहता था।"

मैं चारपाईपर लेट गई और डाक्टर साहब भी मेरी ओर मुँह करके पासवाले एक कौचपर लेट गए। प्रेमकी इस मोहोत्पादक स्तब्ध रात्रिमें हम दो प्रणयी उस निर्जन कमरेमें, उस आलस्यविलास-मय तन्द्रावस्थामे, विना किसी बाधा या रुकावटके निर्मुक्त मानसे अवस्थित थे। पर एक प्रकारकी अनोखी धुकधुकीसे क्यों मेरा हृदय आंदोलित हो रहा था? क्या डाक्टर साहबका भी यही हाल था?

उस समय मैंने अपनी उस ज्यादतीपर कुछ भी विचार नहीं किया। पर आज जब अपने उस दुस्साहसकी बात याद आती है तो आतंकसे कलेजा काँप उठता है। न जाने किस देवताकी मंगलेच्छासे मैं उस रात बच गई। नहीं तो मैं जिस घोर अनर्थकी सीमा-रेखाके पास पहुँच गई थी, उसकी कल्पना भी आज नहीं कर सकती।

मैंने कहा था कि बैठे-बैठे गप्पें मारेंगे। पर गप्पें मारनेकी शक्ति किसीमें नहीं थी। दोनों लालसा, मोह, आलस्य और तन्द्रासे आच्छन्न होनेके कारण ऐसे परास्त और दुर्बल होकर पड़े हुए थे कि किसी बातकी सुध नहीं थी।

इच्छा न होने पर भी लेटे-लेटे मेरी आँखें धीरे-धीरे लग गईं और मैं कुछ ही देरमें घोर निद्रामें अभिभूत हो गई।

जब आँख खुली तो देखा कि डाक्टर साहब यहाँ नहीं हैं। हाथमें बँधी हुई घड़ीमें समय देखने पर मालूम हुआ कि तीन बज चुके

हैं। जाते वक्त डाक्टर साहब बाहरकी तरफका किवाड़ बंद कर गए थे, पर फिर भी जाड़ा मालूम हो रहा था। डर और जाड़ेसे सिरसे पैर तक काँपते हुए मैंने बिना कपड़े उतारे गरम कोटके ऊपर दो कम्बल ओढ़ लिए और मुँह भी ढाँप लिया। हाथकी घड़ी भी नहीं उतारी। कहीं कोई दुष्ट प्रेतात्मा किसी क्षुद्र छिद्रद्वारा प्रवेश करके मेरा गला न दबा बैठे, इस भयसे मैंने कम्बलोंको चारों तरफसे अच्छी तरह समेटकर शरीरके नीचे दबा लिया और पाँव न पसारकर ऊपरको समेट लिए। भयके कारण मेरी निद्रा-जडित आँखें कुछ ही देरमें सचेत और जागरित हो गईं।

धीरे-धीरे जब भय कुछ कम हुआ तो अपने संबधमें नाना चिन्ताओंने मुझे आ घेरा। मैंने सोचा—स्त्रीका जीवन क्या केवल शारिरिक और मानसिक दुर्बलताओंमें ही बीतनेके लिये है? उसका क्या और कोई उद्देश्य नहीं है? कब तक मुझे पुरुषका सहारा मिलता रहेगा और कब तक मैं दूसरोंकी सहायताके भरोसे अपना जीवन बिताऊँगी? भगवान! क्यों तुमने स्त्री-जातिको इतना अशक्त, दुर्बल और सुकुमार बनाकर पैदा किया है!"

मैं अच्छी तरहसे जानती थी कि मेरा यह शारीरिक भय मेरी आत्मिक दुर्बलताका ही दूसरा स्वरूप है। यदि मेरी आत्मामें दृढ़ता, काठिन्य और सहनशीलताके भाव वर्त्तमान होते तो मैं किसी भी बाहरी भयसे कभी भीत न होती। अपने अबलापनसे मन-ही-मन गर्वित होकर डाक्टर साहबकी सरक्षकताका आनद लूटनेकी इच्छा कभी न करती। अकेले, शात और सयत भावसे, अपने भीतरकी समस्त यातनाओंको नीरवताके साथ वहन करती चली जाती। पर नारी-हृदयमें दृढता और सहनशीलताका होना एक प्रकारसे असभव ही है। ये ही गुण ऐसे हैं जो उसके

जीवनकी सार्थकताके लिये परमावश्यक है और इन्हीं गुणोंका उसमें अभाव पाया जाता है। भाग्य-चक्रका परिहास इसीको कहते हैं!

प्राय. दो घटे तक दु ख, शोक, अवसाद और भ्रांति-मिश्रित इसी प्रकारकी भावनाओंमें मैं निमग्न रही। फिर धीरे-धीरे मेरी ऑखें झपने लगीं और मै अचेत होकर सो गई। जब ऑख खुली तो सूरज बहुत ऊपर चढ़ चुका था।

१५

एक दिन कॉलेजमें मेरी बाल्य-सगिनी और सहपाठिनी कमलिनी-ने मुझसे कहा—"कल तेरे डाक्टर साहबसे मेरा परिचय हो गया है। हमारे ॲंगरेजीके प्रोफेसर साहबके साथ कल शाम अचानक वह मेरे कमरेमें घुस पडे। उस समय घरपर कोई नहीं था। मैं ॲंगरेजीके 'टेस्ट'की तैयारीमें लगी थी। मै तो इस 'सरप्राइज विजिट'से चौंक पडी। प्रोफेसर साहबने परिचय कराया। डाक्टर साहब बड़े मजेके आदमी जान पड़े। गज़बकी बातें करते हैं। मुझसे कहते थे कि अपने कॉलेजकी सब लड़कियोंसे मेरा परिचय करा दो! बाप रे बाप! मैं तो घबरा गई। यह उस दिनके नाटकका मजा है। मै तो पहले ही कहती थी।"

मेरा कलेजा धक-से रह गया। मुझसे कुछ कहते न बन पडा और मेरे चेहरेकी रगत उड़ गई। फिर भी अपनेको मैंने किसी तरह सँभाला और हाथकी किताबसे उसे मारकर कहा—"चल हट! ऐसी बातें मुझसे करेगी तो मुँह झुलस दूँगी। मुझे न डाक्टर साहबसे मतलब है, न तुझसे।"

वह निष्ठुरताके साथ मुस्कुराती हुई बोली—" क्या सच कहती है? तुझे डाक्टर साहबसे कुछ भी मतलब नहीं है? अच्छी बात है। देख लूँगी।" यह कहकर वह जाने लगी।

मेरे हृदयमें ईर्ष्याकी आग धधकने लगी थी और इसी आगके कारण कमलिनीसे कई बातें पूछनेको जी तड़फड़ा रहा था। इसलिये उसे जाते देखकर मैंने कहा—" अरी पगली, भगती कहाँको है! ज़रा एक बात सुनेगी भी या नहीं?"

लौटकर उसने पूछा—" क्या बात?"

" यही कि तू कब मरेगी?"

" जब डाक्टर साहबके साथ मेरा ब्याह होगा।" यह कहकर वह निर्लज्जताके साथ खिलखिलाकर हँस पड़ी।

पर उसका यह परिहास मेरे लिये असह्य था। कुछ भी हो, उसके सामने मैं अपने हृदयकी तात्कालिक दुर्दशा किसी प्रकार प्रकट नहीं करना चाहती थी। इसलिये बड़े कष्टके साथ धीरज बाँधकर अपने मार्मिक दुःखको हँसीमें उडानेका भाव दिखलाकर मैंने कहा—" पर तेरे साथ ब्याह होगा कैसे? वह तो कॉलेजकी सभी लड़कियोंको अपने जादूकी डोरीमें एक साथ बाँधनेका इरादा किए बैठे हैं।"

" हाँ, यह बात तो जरूर है!" कहकर वह फिर एक बार खिलखिला पडी।

उस दिन कॉलेजके लेक्चरमें मेरा जी बिलकुल नहीं लगा। जब घर आई तो मनमें बडी बेकली समाई हुई थी। अचानक पख छिन्न हो जानेपर जिस प्रकार आकाशमें उडता हुआ पक्षी शून्यमें कहीं कोई सहारा न पाकर फडफडाता है, उसी तरह मेरा मन भी बेचैनीके सबब

छटपटाने लगा। आज कमलिनीकी तरह सारा संसार मेरा परिहास कर रहा था।

प्रोफेसर किशोरीमोहनका साथ इधर दो-ढाई महीनोंसे डाक्टर साहबने छोड़ दिया था। कम-से-कम हमारे यहाँ डाक्टर साहब पहलेकी तरह उन्हें लेकर अब नहीं आते थे। कारण मुझे माळूम नहीं था। मेरा ख्याल था कि दोनोंके बीच किसी कारणसे अनबन हो गई है। पर आज कमलिनीसे माळूम हुआ कि प्रोफेसर साहबकी सहायतासे डाक्टर साहब कॉलेजकी सभी लडकियोंसे परिचित होना चाहते हैं। यह समाचार बिलकुल अप्रत्याशित था।

दुर्बलता! दुर्बलता! यह सब मेरे नारी-हृदयकी स्वाभाविक दुर्बलताका ही फल था! क्या अपने हृदयको वज्रसे भी कठोर और पत्थरसे भी दृढ बनानेका कोई उपाय मेरे लिये नहीं था? मन-ही-मन कहने लगी—"भगवान्, क्या मैं किसी भी उपायसे संसारके सब स्त्री-पुरुषोंकी उपेक्षा करके अकेले अपने बलपर खडी नहीं हो सकती? बात-बातमें संशय और भयकी यह धुकधुकी अब किसी तरह सही नहीं जाती!"

डाक्टर साहबके इंतजारमें रहकर मैं उनके आने तक किसी तरह अपना समय बिताना चाहती थी। एक ताजा अखबार हाथमें लेकर पढ़ने लगी। मेरे पास दो-तीन अखबार रोज पहुँच जाते थे, पर मैं कभी जी लगाकर उन्हें नहीं पढ़ सकती थी। ऊपर हेड-लाईन देखकर जो कुछ बातें माळूम हो जाती थीं उन्हींमें संतुष्ट रहती थी। इधर असहयोग बडा जोर पकड रखा था। नित्य नए-नए उत्साह और नई-नई खबरें अखबारोंमें छप रही थीं। पर मुझे अपने आगे ये सब बातें अत्यंत तुच्छ जान पड़ती

परामर्श करने, नई-नई 'स्कीमो'को रचने और शहर-शहरमें जाकर सभा-समितियोंमें जोश फैलानेके कारण विलकुल वेफुर्सती रहती थी। अम्माँ भी अत्यंत उत्साहित होकर स्त्रियोंमें नई 'जागृति' उत्पन्न करनेकी चेष्टामें लगी थीं। पर राजू और मैं इन सब बातोंके प्रति उदासीन थे। मैं इसलिये उदासीन थी कि अपनी ही आत्माके तात्कालिक सुख और संतोषकी कल्पनामें मग्न थी। और राजूकी दृष्टि शायद इस वर्तमान कोलाहलके परे जीवन और मृत्युके किसी निगूढ और गभीर उद्देश्यकी ओर लगी हुई थी। एक ही वर्षके भीतर जिस आदोलनका जोश विना किसी फलकी प्राप्तिके ठडा पड गया था उसे कोलाहलके अतिरिक्त और क्या कहा जाय!

कुछ भी हो, नित्यकी तरह आज भी मैं अखबारके हेड-लाईन देखकर पन्ने उलटती गई। लोगोंका खयाल है कि अखबारोंमें नित्य नई-नई खबरें पढनेको मिलती हे। यह कैसी भयकर भूल है, इस वातको बहुत कम लोग समझते है। ससारका चक्र कुछ थोडे हेर-फेरोंके साथ नित्य एक ही रूपमें चलता जाता है। पर मनुष्य ऐसा अधा है कि वे हेर-फेर उसे नित्य नए जान पड़ते है। आज अमुक स्थानमें हिंदू-मुसलमानोंका दगा हुआ। दो-तीन दिनके वाद फिर पढिए। किसी दूसरे स्थानमें ठीक उसी ढगका झगडा दूसरे रूपमें हो गया। आज अमुक नेताप्रणीने किसी विराट् सभामें वडे जोरदार शब्दोंमें कहा कि हमारे युवकोंको ससारके सब काम छोड़कर देशकी सेवामें लगकर स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये मर मिटना होगा। यही वात सैकडों प्लेटफार्मोंसे सैकड़ों नेता नित्य चिल्लाते जाते हैं और नित्य वही एक ही वात अखबारोंमें पढ़नेको मिलती है। अखबारोंको तो कॉलम काले करके ग्राहकोंको फुसलानेका मौका मिल जाता है। पर नेता लोग न मालूम क्या आदर्श अपने सामने

रखकर युवकोंको ससारके अन्य सब काम छोड़कर 'देशोद्धारमें' लगे रहनेका उपदेश देते हैं । ससारमें विपुल जीवनकी जो धारा अविरल गतिसे प्रवाहित हो रही है उसके सभी वृहत् कर्मोंसे विमुख होनेपर देशोद्धारका अर्थ केवल यही रह जाता है कि शहर-शहर, गाँव-गाँवमें जाकर चदा जमा करो, हैंडबिल बाँटो, स्थान-स्थानपर क्रातिके प्लेकार्ड चिपकाओ, प्लेटफार्मोंपर खड़े होओ, कौंसिलोंमें घुसो, अखबारोंमें जोरदार टिप्पणियाँ लिखो और बहुत हुआ तो जेल जाओ । ये ही सब बातें नित्य अखबारोंमें पढनेको मिलती है । बहुत हुआ तो आप यह पढ़ेंगे कि रूसमें क्राति मचनेके कारण जार कत्ल किया गया और सोवियट गवर्नमेंटका अधिकार स्थापित हो गया । कुछ दिनोंके लिये यह खबर नई जान पडती है, पर फिर शासनका वही पुराना नियम जारी हो जाता है, फिर वही कानून, वही जुल्म, युद्ध और प्रतिहिंसाकी वही घातक प्रवृत्ति, वही अतराष्ट्रीय कूटनीति ।

आज भी कोई नई खबर नहीं थी । उठकर मैंने अखबार नीचे पटक दिया और ऊपर छतपर चली गई । चार बज चुके थे । धूप बहुत मीठी जान पडती थी । हमारे विशाल भवनकी यह छत बहुत ऊँचेपर थी । दक्षिणकी ओर दृष्टि डालनेपर गगा-यमुनाका सगम यहाँसे स्पष्ट दिखलाई देता था। मैं इस सुदर दृश्यको अक्सर देखती थी। आज भी उसी ओर टकटकी बाँधकर खडी रही । सगमका शात, स्थिर और स्निग्ध प्रवाह देखकर मेरे चचल और उत्तेजित हृदयमें एक मीठी और शात उदासी व्याप्त हो गई । अकारण मेरी आँखोंसे आँसू उमड़ चले और हृदयकी ज्वाला धीरे-धीरे बुझने लगी ।

बहुत देर तक मैं छतपर इधर-उधर टहलती रही । फिर नीचे उतरकर बगीचेमें चली आई और फूलोंकी क्यारियोंकी परख करने लगी ।

पर वहाँ भी मन नही लगा और मैं लौटकर अपने कमरेमें चली आई। सारे शरीरमें थकावट माल्म होती थी, इसलिये पलँगपर लेट गई। सोनेकी चेष्टा करने लगी, पर नींद नहीं आती थी।

१६

आखिर डाक्टर साहब आही पहुँचे। मैं उठ बैठी और व्यगके बतौर मैंने नीचे झुककर धरती छूकर सलाम किया। बोली— "सैकड़ों परीजादियोंकी गलबँहियोंसे जकडे रहनेपर भी हुजूर इस बाँदीको नहीं भूले, इसके लिये हुजूरका शुक्रिया अदा करती हूँ।"

मेरा यह नया ढग देखकर डाक्टर साहब दग रह गए। अत्यंत विस्मित होकर बोले—"यह क्या! आज यह क्या अजीब तमाशा देखता हूँ!"

मैंने कहा—"डाक्टर साहब, बड़ी खुशीकी बात है कि आजकल दिन-दिन आपके मरीजोंकी सख्या बढती जाती है। आज कितनी युवतियोंकी नाडी देखकर आप यहाँ पधारे हैं?"

घबराकर डाक्टर साहब बोले—"क्यों, क्यों! बात क्या है? समझाकर क्यों नहीं कहतीं?"

"वाह साहब, खूब! आप इस समय तो ऐसे भलेमानस बने हैं, जैसे कुछ जानते ही नहीं।"

"तुम्हारी कसम, मुझे कुछ नहीं माल्म।"

"सच कहते हो?"

"तुम्हें क्या विश्वास नहीं होता?"

"अच्छा सच बतलाओ, कल कमलिनीके यहाँ गए थे या नहीं!"

डाक्टर साहबका चेहरा स्याह हो गया, मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। खीसें निकालकर बोले—"गया तो था। पर इसके क्या यह मानी हैं कि मैं किसी बुरी निगाहसे वहाँ गया था? प्रोफेसर किशोरीमोहन मेरा हाथ पकड़कर वहाँ ले गए थे। अगर यह बात पहलेसे माल्रम होती कि वहाँ जाना इतना बड़ा अपराध है, जितना तुम समझे बैठी हो तो हरगिज़ न जाता।"

डाक्टर साहब अपने गुस्सेको जबरदस्ती पी रहे थे। पर उनके गुस्सेकी परवा न कर मैं अपनी ईर्ष्याकी असह्य आँचसे उन्हें जलाते हुए बोली—"कमलिनीके साथ क्या तुम्हारी कोई खास बात नहीं हुई?"

उत्तरमें डाक्टर साहब लापरवाहीकी हँसी हँसे और बोले—"मैं समझ गया हूँ, कमलिनीने तुम्हारा वहम बढ़ानेके लिये कई बातें अपने मनसे गढ़कर कही हैं। मैं इस प्रकारकी बनावटी और झूठी बातोंकी कोई सफाई नहीं देना चाहता। तुम्हारा जी चाहे तो इन बातोंपर विश्वास करो, न चाहे तो न करो।"

मैंने मनमें कहा—"प्यारे, तुम अगर कृष्णकी तरह सोलह हजार गोपियोंको भी अपने पास रक्खो, तो भी मैं तुम्हें प्यार करना नहीं छोड़ सकती। तुम्हारी बातोंपर विश्वास करूँ चाहे न करूँ, इससे मेरे प्रेममें कोई फरक नहीं पड सकता। सिर्फ इतनी ही विनती करती हूँ कि दर्शनकी प्यासी इस दासीको दिनमें एक बार अपना प्यारा मुखड़ा दिखला दिया करो।"

अपना सारा क्रोध भूलकर मैं फिर एक बार उनके गलेसे लिपटनेके लिये लालायित हो उठी।

मैंने कहा—"मैं सफाई नहीं चाहती। इन बातोंको लगे आग। पर मेरी मौतके दिन अब नजदीक आ गए हैं। दिन-भर मेरे मनमें डर

बना रहता है और रात-भर मैं काँपती रहती हूँ, और नींद नहीं आती। मेरे पीछे या तो कोई भूत लग गया है या कोई खराब बीमारी चिपट गई है। जल्दी इसका इलाज न होगा तो मैं जरूर मर जाऊँगी।" मेरी आँखें भर आती थीं।

डाक्टर साहब बोले—"भूत-वूत कुछ नहीं, तुम यों ही घबरा उठी हो। तुम्हारे लिये सिर्फ 'नर्व-टानिक' की जरूरत है। दो दिनमें तुम्हारी यह 'वीकनेस' सब ठीक हो सकती है। 'वाइनोना' या 'मेनोला' किसीका भी इस्तेमाल कर सकती हो। 'न्यूरेस्थीनिया' के लिये एक ऐसा टॉनिक मैं बतला सकता हूँ जो अचूक और तत्काल फलदायक होगा। पर उसका नाम सुनते ही तुम चौंक पड़ोगी, इस लिये साहस नहीं होता।"

उत्सुक होकर मैंने कहा—"अब तुम्हें बतलाना ही होगा। मेरा जी तलमलाने लगा है।"

"पोर्टवाइन! धीरे-धीरे इसका अभ्यास करनेसे सब किसमकी कम जोरियाँ बहुत जल्दी काफ़ूर हो जायँगी, मैं दावेके साथ यह बात कह सकता हूँ। सिर्फ सेंटीमेंटको दबानेकी ज़रूरत है।"

टॉनिकका नाम सुनकर मैं वास्तवमें घबरा गई। बोली—"माफ चाहती हूँ। मुझे किसी टॉनिककी जरूरत नहीं।"

डाक्टर साहबने कहा—"मैं तो पहले ही यह बात कह चुका था इस प्रकारके वाहियात सेंटीमेंटोंकी वजहसे ही यह देश आज दुर्बल और नपुसक बना है। पहले हमारे देशमें इन सब बातोंमें स्वाधीनता पाई जाती थी। आयुर्वेदमें कहा गया है कि 'औषधार्थे सुरा पिबेत्'। पर आजकल सभ्य समाजमें 'टेंपरेंस' का ढोंग पाया जाता है। मैं कई

ऐसे लोगोंको जानता हूँ जो एक-एक बोतल रोज साफ कर जाते हैं, पर बाहर आकर कहते हैं कि हम तो कोई विलायती टॉनिक भी इसलिये नहीं पीते कि उसमें बीस 'पर सेंट' एल्कोहल मिला रहता है। यह सब ढोंग नहीं तो क्या है! मैं तो दो-चार पेग रोज चढ़ा लिया करता हूँ—फॉर हेल्थ्स् सेक। मैं यह बात किसीसे छिपाना नहीं चाहता। तुम्हारे समाजकी कई लेडियाँ भी तो पार्टियोंमें खुले-खजाने 'ड्रिंक' करती हैं!"

मुझे आज तक मालूम नहीं था कि डाक्टर साहब रसायन-विशेषका सेवन करते हैं। मेरे हृदयमें इस 'रसायन'के विरुद्ध जो एक संस्कार (डाक्टर साहब जिसे सेंटीमेंट कह रहे थे) बद्धमूल था, उसपर आघात पहुँचा। कुछ भी हो, डाक्टर साहबकी अंतिम बात सत्य थी। जिन सभ्य महिलाओंके समाजमें हम लोगोंको आना-जाना पड़ता था उसमें ऐसी महिलाएँ कुछ कम नहीं पाई जाती थीं जो नित्य मद्यका सेवन करती थीं। पर हमारे कुटुंबमें इसका उपयोग बिल्कुल निषिद्ध था। संभव है, किसी जमानेमें काकाने इसका उपयोग किया हो। पर अब राजूका कट्टर-पन देखकर सबके मनमें इस तरल पदार्थके प्रति उत्कट घृणा उत्पन्न हो गई थी।

मैंने कहा—"मैं समझ गई, तुम कभी मेरे रोगका ठीक-ठीक निदान नहीं कर सकते। सिर्फ एक धुन तुम्हारे मनमें समाई हुई है। वह यह कि तुम हद दर्जे तक मेरा नैतिक पतन देखना चाहते हो। स्त्रियोंकी मानसिक दुर्बलता जितनी बढ़ती जाती है, पुरुषोंको उतनी ही अधिक प्रसन्नता होती है। पुरुषोंमें नैतिक दृढ़ता नहीं होती, इसलिये वे इस संबंधमें स्त्रियोंका बड़प्पन सहन नहीं कर सकते।"

मेरी इस बातका कुछ उत्तर न देकर डाक्टर साहब मुस्कुराने लगे।

१७

रातको मैंने लीलाको सोनेके लिये अपने ही कमरेमें बुलाया। सोनेके पहले लीलाने कहा—" माधवी दीदीके पति सख्त बीमार हैं। "

मैंने आश्चर्यके साथ पूछा—" कौन माधवी दीदी ? "

" वही जिनके यहाँ उस दिन हम लोग गए थे। जिन्होंने भीतरका दरवाज़ा खोला था—दीनू और रामूकी अम्माँ। उनके पति देहरादूनमें नौकर हैं। वह माधवी दीदीको अपने साथ ले जानेके लिये यहाँ आए थे। यहाँ आते ही उन्हें न्यूमोनिया हो गया—डबल न्यूमोनिया। आज चार दिन हुए। आज हालत बहुत खराब है। डाक्टर लोग भी निराश हो गए हैं। भैया मुझे साथ लेकर आज वहाँ गए थे। "

इस दु खी कुटुंबके साथ लीलाने भी अपना संबंध स्थापित कर लिया था। केवल मेरे लिये ही इस कुटुंबका जीवन बिलकुल विदेशी, अपरिचित, अज्ञात और विजातीय था। पर आज लीलाकी माधवी दीदीके पतिका समाचार सुनकर मेरे हृदयके तलप्रदेशमें सहानुभूतिकी एक सुकुमार वेदना उत्थित होने लगी। उस तेजस्विनी नारीकी वह क्षणिक झलक जो मैंने देखी थी, वह फिर मेरे हृदयमें प्रतिबिंबित होने लगी।

मैंने पूछा—" माधवी दीदी क्या रोती थीं ? "

लीलाने कहा—" रोएगी क्यों नहीं ! भैया उन्हें दिलासा देते थे। "

असहाय, अबला नारी-जातिकी जन्म-जन्मांतरकी वही प्रकृति-सुलभ दुर्बलता ! रोओ, रोओ ! हे नारी ! तुम्हें रोनेके अतिरिक्त और कोई अधिकार या बल ही भगवाने नहीं दिया है।

लीलाने पूछा—"दीदी, विधवाको क्या सचमुच भारी दुःख होता है? माँ-बापके मरनेका दुःख क्या पतिके मरनेके दुःखसे बड़ा नहीं होता?"

इस अबोध बालिकाको मैं यह बात कैसे समझाती जब विधवाके दुःखका मर्म मैं स्वयं नहीं समझती थी! मुझे विधवाका दुःख केवल स्वार्थ-जनित जान पड़ता था। स्त्रीके हृदयकी असमर्थतासे मैं भली भाँति परिचित थी। मेरी यह धारणा थी कि स्त्रीका शक्तिहीन हृदय उसके जीवनका भार ढोनेमें असमर्थ है, इसलिये पुरुषके ऊपर अपने जीवनका दुर्वह भार डालकर वह निश्चिन्त होकर अपना जीवन बिताती है। पर जब अचानक उसका पुरुष किसी अपरिचित कारणसे अपना बोरिया-बँधना फेंककर किसी अज्ञात देशकी यात्राको चल पड़ता है तो स्त्रीके लिये महासंकटमय स्थिति उपस्थित हो जाती है। वैवाहिक जीवनमें यह भार वहन करनेकी रही-सही शक्ति और अभ्याससे भी वंचित हो जाती है, इसलिये विधवाकी अवस्था और भी अधिक जटिल हो पड़ती है। वैधव्यके दुःखकी इसी प्रकारकी धारणा मेरे हृदयमें बद्धमूल थी।

मैंने कहा—"बैना, माँ-बापके मरने पर भी घोर दुःख होता है और पतिके मरनेपर भी। कौन दुःख बड़ा है और कौन छोटा, यह मैं नहीं बतला सकती। भगवानसे विनती करती हूँ कि इन दो दुःखोंमेंसे कोई भी दुःख मुझे न सहना पड़े।"

कुछ देर तक चुप रहकर लीला अचानक बोल उठी—"अच्छा दीदी, कोई कहानी सुनाओ, पलँगके ऊपर लेटे-लेटे सुनूँगी। तुम भी अपने पलँगके ऊपर लेट जाओ।"

जो कहानियाँ मुझे याद थीं प्रायः उन सबको लीला सुन चुकी थी। पर फिर भी उसकी हवस पूरी नहीं होती थी। वेताल-पचीसीकी दो-तीन

कहानियाँ मुझे याद थीं। सभ्य-समाजमें हमारे प्राचीन, हिंदू-समाजकी इन सुंदर लौकिक कथाओंका प्रचलन नहीं है। पर राजू बड़ा शैतान और धूर्त लड़का था। अँगरेजी और फ्रेंच कहानियोंसे उकताकर वह मथुरामें छपी यह अनोखी पुस्तक न मालूम कहाँसे एक दिन उठा लाया। मैंने भी उसे चुराकर पढ़ा था। पर लीलाके हाथ वह पुस्तक न लगी—शायद कोई नौकर उड़ा ले गया था। कुछ भी हो, लीलाको वह कहानियाँ बिलकुल नई और रोचक जान पड़ीं। दो कहानियों तक तो वह हुँकारा भरती रही, पर तीसरी कहानीके आरंभसे ही उसकी आँखें लग गईं।

एक लंबी साँस लेकर मैंने करवट बदली। अपनी प्यारी, भोली और स्नेहमयी बहनको अचेत जानकर मेरे मनमें एक सकरुण, स्नेहमय, सुमधुर विषादका भाव व्याप्त हो गया। अचानक न मालूम क्या सोचकर मैं पलँग परसे उठ बैठी और लीलाके पास जाकर बड़े गौरसे उसकी ओर टकटकी बाँधे रही। उसके प्यारे मुखमें मूर्च्छाकी तरह मनोमुग्धकर आभा प्रभासित हो रही थी। मेरी आँखोंसे प्रेमके आँसू उमड़ चले। मैंने बार-बार उसका मुँह चूमा, पर फिर भी जी नहीं भरता था। वह अचेत पड़ी थी। मेरे चुंबनसे उसकी निद्रामें बिलकुल विघ्न नहीं पहुँचा। लीला कैशोरावस्थामें पदार्पण कर चुकी थी। पर उसके स्वभावमें और मुखमें किसी प्रकारकी तीव्रता या स्वप्नमय जीवनका आवेश नहीं पाया जाता था। बालकपनकी वही सरलता और स्निग्ध चंचलता अभीतक उसकी प्रकृतिमें वर्त्तमान थी। इस कारण मैं उसे और भी अधिक प्यार करती थी। मेरी आँखें उसीके मुँहकी ओर लगी थीं और हटना नहीं चाहती थीं। उसे ताकते-ताकते एक तीखी, सुकुमार वेदनासे मेरा हृदय रह-रहकर काँप उठता था।

मैंने सोचा—"लीला जब बड़े सुखमें शांतिपूर्वक सोई हुई है तो क्यों मेरे मनमें उसके लिये करुणामय वेदना जागरित हो रही है? यही क्या संतानकी मंगलाकांक्षिणी माताके हृदयका हाहाकार है? अगर ऐसा है तो कैसे मेरे स्वार्थपूर्ण, निष्ठुर हृदयमें यह भाव अपने आप संचारित होने लगा है?"

प्रकृतिके अज्ञान और अज्ञेय चक्रके प्रति सभ्रमके साथ मन-ही-मन प्रणाम करके मैं फिर लौटकर अपने पलँगपर आकर लेट गई।

१८

दूसरे दिन खा-पीकर जब मैं कॉलेज जानेकी तैयारी कर रही थी, तो लीला रोते हुए मेरे पास आई और कहने लगी—"माधवी दीदी विधवा हो गईं।"

मेरा कलेजा-धक-से रह गया। चौंककर मैंने कहा—"ऐं! यह क्या कहती है!"

लीला बोली—"अभी भैयाको बुलाने एक आदमी आया है। मैं आज स्कूल नहीं जाऊँगी। भैयाके साथ वहीं जा रही हूँ।"

"राजूने क्या मुझे बुलाया है?"

"नहीं, उन्होंने मुझसे अपने साथ चलनेके लिये कहा। मैं सिर्फ तुम्हें खबर देनेके लिये आई हूँ।"

मैंने सोचा—"माधवी दीदीका संबंध केवल इन दो जनोंके साथ है—मैं उनकी दुनियासे बिलकुल बाहर हूँ और उनकी बहन कहलाए जानेके योग्य नहीं हूँ। इसलिये राजू उनकी इस घोर संकटमय स्थितिमें मुझे उनके पास ले जाना नहीं चाहता। जब उनसे मेरा कोई नाता ही नहीं

है और केवल आधे घटेका बाहरी परिचय है तो क्यों मैं उनके लिये दु:खित होऊँ ? ससारमें कितनी ही स्त्रियाँ रात-दिन विधवा होती जाती हैं, उन सबके लिये क्या मुझे दु ख होता है ? तब क्यों इस एक विशेष स्त्रीके वैधव्यसे मेरे हृदयमें आघात पहुँचता है ?"

मुझे खबर नहीं थी कि वह क्षण-भरका परिचय ही युग-युगातका परिचय था। दरिद्र घरकी उस असाधारण युवतीके हृदयकी जिस चुम्बक शक्तिने राजूको स्नेहपाशमे दृढताके साथ बाँध लिया था, उसीने क्षण-भरमें मेरे हृदयपर भी अज्ञात रूपसे गहरा प्रभाव डाल दिया था।

मैंने बडे दुःखके साथ लीलासे कहा—" नहीं लीला, यह नहीं हो सकता। राजू चाहे अपने साथ मुझे वहाँ ले चलनेके लिये राजी न हो, मैं जबर्दस्ती उसके साथ चलूँगी। तुम दोनोंकी ही तरह क्या माधवी दीदी मेरी भी दीदी नहीं हैं ? "

" क्यों नहीं दीदी ! तुम भी चलो। तुम्हें कौन रोकता है ? भैयाको तुम्हारे आनेसे बड़ी खुशी होगी। "

* * *

हेवेट रोडमें नियत स्थानपर पहुँचकर जब हमारी मोटर रुकी तो बाहर सड़कपरसे ही स्त्रियोंकी रोआ-पीटी और हाहाकारका रव सुनाई दिया। मैं मन-ही-मन यह कल्पना करते हुए चली कि माधवी दीदी सिर पीट-पीटकर, बालोंको नोचकर, धरतीपर पछाड़ खाकर रो रही होंगी। भय, आतक और सकोचसे मेरे पाँव आगेको नहीं बढ़ते थे। मकानके हातेके भीतर जाकर क्या देखती हूँ कि माधवी दीदी नहीं, बूढ़ी अम्माँ लाशको घेरकर सिर पीटकर, धाड़ें मारकर रो रही हैं। वह बीच-बीचमें ऐसा विकट शब्द मुँहसे निकाल रही थीं कि उस दोपहरमें

समय, सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशमें भी वड़े-वड़े धीरोंके दिल सभरत दहल-दहल उठते थे। माधवी दीदीकी आँखें आँसुओंसे भींग रही थीं, पर वह शातिपूर्वक अपनी अम्मोंका हाथ पकड़कर उन्हें दिलासा दे रही थीं। करुण कठसे कहती थीं—"अब रोनेसे क्या होगा अम्मों? मेरा सर्वनाश होना था, सो हो गया। अब धीरज धरो। दीनू और रामू तुम्हें देखकर बौखला-से गए हैं।"

वास्तवमें दीनू और रामूके होश ठिकाने नहीं थे। वे दोनों नानीकी ओर ताकते थे, फिर रोकर अपनी अम्माँका अचल पकड़ते थे। फिर कुछ देर तक चुप रहकर बडे गौरसे नानीका हाल देखते थे, फिर अम्माँका अचल पकडकर रोने लग जाते थे और पूछते थे—"काका और नानीको क्या हुआ अम्मों?"

उस घोर सकटके समय भी, जब अपने तन-वदनकी सुधिका रहना भी असंभव होता है, माधवी दीदी अत्यत धैर्यके साथ अपने पुत्रोंका मुँह चूम रही थीं और उन्हें दिलासा देती हुई कहती थीं—"रोओ मत मेरे लाल! किसीको कुछ नहीं हुआ।" पर बच्चे नहीं मानते थे।

जब माधवी दीदी बूढी अम्मोंको समझानेकी कोशिश करती थीं तो वह और भी जोरसे रोकर कहती थीं—"मैं कैसे यह दुख सहूँ, माधवी! क्या ऐसे दुखोंको एक-एक करके मेरे ही सिरपर सवार होना था! मैं अभागिन आज तक मर क्यों नहीं गई! एक लड़का गया, दूसरा लड़का गया, अब आज लड़की रॉड़ हुई। मेरी कोखमें क्या इसी तरह आग लगना था!" यह कहकर वह जोरसे अपनी छाती पीटने लगीं। कुछ देर तक छाती पीटकर फिर बोलीं—"माधवी, तू अभी तक जीती क्यों है? क्या तूने भीतर कहीं जहर नहीं रक्खा है? गा क्यों नहीं लेती? मर जा बेटी, मर जा! अब जीना महापाप है!"

माधवी दीदीके कलेजेमें इन शब्द-बाणोंसे कैसी चोट पहुँची होगी, इस बातकी कल्पना सहजमें की जा सकती है। पर इन मर्म-भेदी शब्दोंको भी शांतिपूर्वक धैर्यके साथ सहकर दीदीने कहा—"मरनेसे क्या होगा, अम्माँ! अपने कर्मोंका भोग तो मुझे हर हालतमें भोगना होगा। मैं मर जाऊँ तो दीनू, रामू और छोटे बच्चेका क्या हाल होगा!"

पर बूढ़ी अम्माँ अपने होशमें नहीं थीं, नहीं तो जले दिलके फफोलोंमें नमक छिड़कनेवाली ऐसी मार्मिक बातें कभी उनके मुँहसे न निकलतीं। दीदीकी बातें उनके कानोंमें गईं या नहीं, इसमें शक है। वह अपना ही रोना एक ही ढंगसे रोते चली गईं।

१९

बूढ़ी अम्मोंके दो पुत्र भी गुजर चुके हैं, यह बात मालूम होने पर उनका उत्कट शोक-प्रकाश, जो पहले कुछ अशोभन जान पड़ता था, अधिक अनुचित नहीं मालूम हुआ। पर माधवी दीदीका धैर्य अत्यंत आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय, अनुभवातीत था। मैं चकित और निमूढ़-सी रह गई। जब कुछ स्थिर हुई तो इधर-उधर दृष्टि फेरने लगी। एक कोनेमें उस दिनकी वही किशोरी लड़की, जो हाथमें लाल-टेन लेकर हमें नीचेतक पहुँचा गई थी, अपने हाथमें माधवी दीदीका दुधमुँहा बच्चा थामकर अत्यंत शांत और अस्पष्ट स्वरमें रोते हुए नीर-वताके साथ अश्रु तर्पण कर रही थी, और बीच-बीचमें अपने अंचलसे आँखें पोंछती जाती थी। एक तरफ दो-चार आदमी अर्थीको तैयार करनेमें लगे थे। एक कोनेमें राजूकी अवस्थाका एक लड़का अपना उदास मुँह लेकर खड़ा था। राजूने बड़ी स्फूर्तिसे उसके पास जाकर उसका हाथ पकड़कर कहा—"मोटा, अब इस तरह उदास और सुस्त होकर

खड़े रहनेसे क्या फायदा ? अम्माँ और दीदीको समझाकर दिलासा देनेका काम तुम्हारा ही है। चलो।" यह कहकर वह भोलाका हाथ पकड़कर बूढी अम्माँके पास लाया।

पर भोला बहुत घबराया हुआ था और हौलदिल-सा जान पड़ता था। वह पहलेकी तरह चुपचाप खड़ा रहा। राजूने बूढी अम्माँके दोनों हाथ पकडे और दृढताके साथ कहा—"अम्माँ, समझदार होने पर भी आप नासमझोंका-सा काम कर रही हैं, यह बडे अफसोसकी बात है। आपको चाहिए था कि धीरज रखकर दीदीको दिलासा देतीं, पर आप खुद बेसुध बनी बैठी हैं। जरा शात होकर अपने नातियोंको गोदमें बिठाइए।"

राजूके कठस्वरमें जादू था। उसके शब्दोंसे उस शोकाच्छन्न जन-समाजके मुर्दे दिलोंमें भी उत्तेजना पहुँची। ऐसा जान पडा जैसे इन सम्मोहक शब्दोंसे मृतककी आत्मामे भी किंचित् चैतन्यका सचार हुआ। किसी दूसरे व्यक्तिके मुँहसे ये बातें ढोंगसे भरी और अशोभन-सी जान पडतीं, पर राजूके कठ-स्वरकी सहृदयता अविवादास्पद थी।

कुछ भी हो, बूढ़ी अम्मोंने रोना नहीं छोड़ा। कहने लगीं—"राजू, मुझे जहर देकर मार डालो, बेटा! मैं अब जीना नहीं चाहती। एक दूसरी अर्थीमें ले जाकर मुझे भी चितामें जला डालो।"

राजू हैरान था। माधवी दीदी नीरव अश्रुपात कर रहीं थीं। लीला और मैं पुतलीकी तरह खड़ी थीं। इस शोक-विह्वल समाजके बीच हम दोनों बन-ठनकर, शृगार किए हुए विराजमान थीं। लज्जा, जड़ता और आत्मग्लानिसे मैं गड़ी जाती थी। इतनी शक्ति और योग्यता भी मुझमें नहीं थी कि माधवी दीदीसे समवेदनाकी दो-चार बातें कहूँ। राजूके कार्यमें बाधा पहुँचानेके लिये ही हम दोनों आई थीं।

माधवी दीदीने भग्न कठमें मुझसे कहा—"बैठो बहन, कब तक खड़ी रहोगी!"

भगवान्! क्या स्त्रीके कपोत-कोमल हृदयमें ऐसी वज्र-दृढताका होना सभव है! मेरी आँखोंसे श्रद्धाके आँसू उमड़ चले। आज अपने कपडोंकी माया त्याग कर मैं निराभरणा पृथ्वी माताके ऊपर दीदीके साथ बैठ गई और बोली—"दीदी, तुम्हारे इस घोर दुःखके समय तुम्हारे रोनेमें केवल बाधा पहुँचानेके लिये ही मैं आई हूँ। मुझे माफ करो।"

मेरी इस बातसे दीदीके दुःखका बॉध टूट पड़ा। वह न रह सकीं और मेरे गलेसे लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगीं।

अर्थी तैयार हो गई थी। राजूने लाशके पॉव पकड़े और एक दूसरे आदमीने सिर पकडा। जब लाशको उठाकर अर्थीपर ले जाने लगे तो बूढ़ी अम्माँने यथाशक्ति गला फाड़-फाड़कर चिल्लाना शुरू कर दिया और बाल-बच्चे भी चिल्लाकर रोने लगे। माधवी दीदीने चौंककर मेरा गला छोड दिया और मुँह फेरकर उठ खडी हुई। इस समय तक वह धीमे स्वरमें रो रही थीं। अब उन्होने भी अपना स्वर कुछ चढा दिया। उनके इस स्वरमें न मालूम क्या जादू भरा था जिससे उनका रोना भी मीठा जान पडता था। इस समय उनका सुदर मुखमडल किसी अलौकिक आभासे देदीप्यमान हो रहा था और उसमें एक उन्मत्त आवेश झलक रहा था। उनके सयमका बॉध बिलकुल टूट गया था। अज्ञात और अपरिचित पुरुषोंसे भरे हुए उस समाजके बीच उनके सिरका अचल नीचेको खिसक गया था और उनके निखरे हुए बालोंकी नग्न बहार स्पष्ट दिखलाई देती थी। पर इस संबधमें बिलकुल उदासीनता प्रकट करके वह धीरे-धीरे शांत और संयत गमनसे, अर्थीकी तरफ़ आगेको बढीं। तात्कालिक उत्कट दुःखकी विकरालताके कारण द्विधा, संशय और

लज्जाका लेश भी उनकी विशुद्ध आत्मामें वर्त्तमान नहीं था। महामाया नारीकी वह मोहिनी मूर्ति देखकर सम्भ्रमके अतलव्यापी भावसे मेरा हृदय पुलकित और कटकित हो उठा।

राजूने किसी अज्ञात आशकासे भयभीत होकर दीदीको आगे बढ़नेसे रोक दिया। दीदीने व्याकुल करुणाके स्वरमें अत्यत अनुनय-विनयके साथ रोते हुए कहा—"राजू, मुझे जाने दे मेरे भैया, मत रोक, जानेके पहले एक बार मुझे उनके पाँव छूने दे, मैं और कुछ नहीं करूँगी, सिर्फ पाव छूने दे, छूने दे! क्यों रोकता है!"

पत्थरको पिघला देनेवाला, दीदीका यह अनुनय-वचन सुनकर राजूने उन्हें छोड दिया। अर्थीके पास जाकर दीदीने पतिदेवके पैरोंके ऊपर अपना सिर रक्खा और उन्हें प्रणाम किया। कुछ देर तक वह इसी स्थितिमें रहीं। फिर उठकर ऊपर किसी अज्ञात देवताके प्रति हाथ जोडकर न माल्म क्या प्रार्थना करने लगीं। फिर लौटकर अम्मोंके पास चली आई। अम्माँ पहलेकी ही तरह सारे आसमानको अपने सिरपर उठाए हुए थीं।

"राम नाम सत्य है" के रवसे आकाश गूँज उठा और मेरे हृदयमें आतक छा गया। राजू अर्थीके साथ श्मशानको चला गया। मैं और लीला स्तब्ध होकर बैठी थीं। अर्थीके चले जानेपर हम दोनों कुछ देर तक दीदीके साथ बैठकर फिर मोटरमें सवार होकर घरको वापस चली आईं।

२०

आज तक मेरा ख्याल था कि दुर्बलता ही नारी-प्रकृतिका प्रधान लक्षण है। नारीके हृदयमें शक्तिकी कठिनता पाई जा सकती है, यह बात मेरी कल्पनाके अतीत थी। आज जब माधवी दीदीका

सर्वनाश हो गया तो उसके शून्य और आशाहीन हृदयमें दृढ़ता और धैर्यके अपूर्व सामंजस्यका जो अनुपम दृश्य मुझे दिखलाई दिया उसने मुझे चकित और मोहित कर दिया था। आज तक मुझे विश्वास था कि स्त्रियाँ तात्कालिक, प्रत्यक्ष लाभ-हानिको लेकर ही जीवन विताती हैं। पतिके द्वारा जब तक उनकी शरीर-यात्राका निर्वाह हो सका, जब तक उनकी रक्षा हो सकी, तब तक उसे देवता मानकर पूजती है और जब उनका यह परम और मुख्य स्वार्थ पतिद्वारा सिद्ध नहीं हो सकता तो वह चाहे इस लोकमें विराजमान हो या परलोकमें, उससे उनका विशेष सरोकार नहीं रहता। आज तक यही धारणा मेरे-हृदयमें बद्धमूल थी। पर आज मैंने देखा कि भयकर स्वार्थहानि होते हुए भी माधवी दीदीने अविश्वसनीय धैर्यके साथ सब दु ख सहा और अप्रत्यक्षमें पतिके मिलनकी आशा नहीं छोड़ी। अपने पतिके मृत शरीरको उन्होंने इस ढगसे आतरिक प्रणाम किया जैसे वह मृत्युलोकको नहीं, कहीं परदेशको जा रहे हों। एक-न-एक वार उनके दर्शन फिर मिलेंगे ही, यह ध्रुव विश्वास उनकी म्लान और करुण आँखोंसे स्पष्ट झलक रहा था। रास्ते-भर मैं मन-ही-मन उन्हें निरतर प्रणाम करती जाती थी। आज मैंने अपने जीवनमें प्रथम वार एक ऐसी स्त्रीको देखा जो विना किसी पुरुषकी सहायताके अकेले अपने बलपर अनत विश्वके असख्य दुर्गमपथोंसे होकर यात्रा करनेका दम भरती थी। एक गहन रहस्यका अधकारमय पट आज मेरी आँखोंसे तिरोहित हो गया। भक्ति, श्रद्धा और सम्मोहके भावसे गद्गद और आच्छन्न होकर मैं घर पहुँची।

मुझे आज अचानक रामायण पढ़नेकी धुन सवार हुई। सती-साध्वी सीताके पुनीत चरित्रका रस आकंठ पान करनेकी इच्छा हुई। वाल्मीकीय रामायणका एक पूरा, बढ़िया 'सेट' मेरे पास वर्त्तमान था।

उत्तरकाड उठाकर सीता-वनवासकी कथा पढ़ने लगी। नारीके ऊपर पुरुष-जातिके चिर-कालिक अपमानका वर्णन पढ़कर मेरा खून खौलने लगा, और सुकुमारी, निस्सहाया, अवला सीताकी विवशता देखकर क्रोधसे मैं भर गई। जब निर्दयी राम सीताको अपना सतीत्व एक बार फिरसे प्रमाणित करनेके लिये बुलाते हैं तब इस वर्णनमें नारी-निर्यातन चरम सीमापर पहुँच जाता है। इस घोरतम अपमानके बदलेमें जब सीता कहती है—"तदा मे माधवी देवी विवर दातुमर्हति," तब यह वाक्य पढ़कर मेरे रोंगटे खड़े हो गए और आँखोंसे आँसुओकी झडी लग गई। पुस्तक बद करके मैं मन-ही-मन रटने लगी—"तदा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति—तदा मे माधवी देवी विवर दातुमर्हति।" मैं भी आज विवरके गर्भमें चिरकालके लिये विलीन हो जाना चाहती थी।

माधवी दीदीके वैधव्यका दृश्य देखनेपर और रामायण पढ़नेपर मैंने अपने हृदयमें अद्भुत परिवर्त्तन-सा पाया और ऐसा मालूम करने लगी जैसे मेरी आत्मामें कभी कोई अपवित्र भाव उत्पन्न ही नहीं हो सकता। एक दिव्य प्रेरणाके प्रभावसे उत्तेजित होकर मैं अत्यंत ऊर्द्धवाही वायु-मंडलमें तरंगित होने लगी। मेरी नसोंमें एक अभिनव स्फूर्ति और प्रचंड शक्तिका सचार होने लगा। इस कायाकल्पसे मुग्ध और आश्चर्यान्वित होकर मैं पलँगपर लेटी रही और नाना भावनाओंमें डूबी रही।

लाहौरमें एक वृहत् राजनीतिक कान्फ्रेंस होनेवाली थी। काका और अम्माँको उसमें सम्मिलित होनेके लिये आज चार बजेकी गाड़ीसे जाना था। डाक्टर साहबको यह बात कल्हीसे मालूम थी। इसलिये उन्हें स्टेशनपर पहुँचानेके लिये वह नियत समय पर आ पहुँचे। डाक्टर साहबकी सूरत देखते ही मेरा कलेजा फड़क उठा और हृदयकी स्थिति बिल्कुल उलट-पुलट हो गई। कहाँ गई माधवी दीदीकी चिंता और

कहाँ गया सतीत्वके आदर्शका पुनीत विषाद! पलक-भरके भीतर ही मैं अपने रात-दिनके आमोद-प्रमोदकी दुनियामें आ गई। डाक्टर साहबका कंठ-स्वर सुनकर मेरा हृदय ठीक तालमें नाचने लगा।

२१

काका और अम्मोंको पहुँचानेके लिये लीला, मैं और डाक्टर साहब भी उनके साथ चले। जब डाकगाडी छूट गई तो हम तीनों वापस चले आए। दिन ढलने लगा था, सूर्य छिपनेको ही था। हेमत-कालकी सन्ध्या एक तो वैसे ही विषाद-भरी होती है, तिस-पर आज माधवी दीदी निधवा हो गई थी, राजू श्मशानको गया हुआ था और काका और अम्मों भी घरको सूना करके चल दिए थे। घर पहुँचने पर मेरे मनमें ऐसी उदासी छा गई कि बोलनेकी भी शक्ति नहीं रही। केवल डाक्टर साहब मुझे उल्लसित करनेमें समर्थ थे। पर आज वह भी किसी कारणसे उमगहीन जान पडते थे। शायद लीला हमारे साथ होनेसे उनकी स्वच्छद वार्तोंमें विघ्न हो रहा था।

कुछ भी हो, मेरी उदासीका सबसे बडा कारण था—काकाकी विदाई। अम्मोंके विना मैं बडी खुशीसे रह सकती थी। पर काकाका बिछोह मेरे लिये असह्य था। आज तो उनके बिछोहका दुःख सब दिनोंसे अधिक तीक्ष्ण मालूम हो रहा था। काकाको मैं बहुत प्यार करती थी, यह बात मैं जानती थी। पर इतना अधिक प्यार करती हूँ, यह बात आज प्रथम वार मुझे मालूम हुई।

इसके अतिरिक्त मैं आज एक नई और अनोखी वेदनाका अनुभव कर रही थी। इस वेदनाका सबध राजूसे था। मेरे मनमें यह भाव रह-रहकर जागरित हो रही थी कि मेरा भाई राजू, जो पहले

अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहता था और अब उपेक्षा (सभवत घृणा) की दृष्टिसे देखता है, एक दु खी घरके दु खका साक्षी होकर स्मशानको गया है—मेरा प्यारा भाई इतनी छोटी अवस्थामें आमोद-प्रमोदसे रहित होकर गभीर-भावनाओंमें निमग्न रहकर, असख्य मनुष्योंसे पूर्ण इस ससारमें नि:सग जीवन बिताकर स्वेच्छासे दु ख और कर्तव्यके गहन कटकमय पथमें भ्रमण कर रहा है। इस भावनासे मेरे मनमे एक तरफ तो गर्व, करुणा और स्नेहका उद्रेक हो रहा था और दूसरी तरफ प्रतिहिंसा और मानके भावसे मेरी छाती फूल उठती थी। एक बार मैं सोचती—"क्या मैं राजूकी उपेक्षा और घृणाके योग्य हूँ? क्या मैं इतनी हीन हूँ? क्यों वह मेरा स्नेह स्वीकार नहीं करना चाहता।" और यह सोचते-सोचते गुस्सेसे कॉपने लगती और रोना चाहती। पर फिर उसी दम मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न होता कि मैं वास्तवमें नीच और घृणित हूँ और राजूकी बहन कहलाए जानेके योग्य नहीं हूँ। अपनी मानसिक वृत्तिकी हीनताकी कल्पना करके अवसाद और क्लांतिके भारसे मेरा हृदय दब जाता था।

भीतर आकर जब हम लोग बैठ गए तो मैंने कहा—"डाक्टर साहब, आज मेरे मनमें बडी उदासी छा गई है। एक स्त्रीको मैं आज अपनी आँखोंके सामने विधवा होते देख आई।"

डाक्टर साहब बोले—"इसमें आश्चर्यकी बात क्या है।"

मैंने कहा—"पर वह युवती थी।"

"बाल-वैधव्य नहीं भोगना पड़ा, यही गनीमत है।"

"आपका कलेजा वज्रसे भी कठोर है।"

डाक्टर साहब मुस्कुराने लगे। बोले—"संसारमें रात-दिन असंख्य स्त्रियाँ विधवा होती जाती हैं, किस-किसके लिये रोया जाय!"

माधवी दीदीसे डाक्टर साहब परिचित नहीं थे, नहीं तो कैसे उसकी उपेक्षा करते, जरा मैं भी देख लेती।

मैंने कहा—"भगवानसे प्रार्थना करती हूँ कि निर्मोही आदमीसे दुश्मनका भी पाला न पड़े।"

डाक्टर साहब ठठाकर हँस पड़े। बोले—"निर्मोही किसे बतलाती हो? मै क्या निर्मोही हूँ?"

मैंने बच्चोंकी तरह मुँह बनाया।

लीलाने कहा—"अच्छा डाक्टर साहब, अगर आप निर्मोही नहीं हैं तो मेरी एक प्रार्थनापर ध्यान दीजिए।"

डाक्टर साहबने पूछा—"क्या प्रार्थना है?"

लीलाने कहा—"आप अपने जमानेके मेडिकल कॉलेजके लडकोंके कई क़िस्से सुनाया करते हैं। आज भी कोई दिलचस्प किस्सा सुनाइए जिससे वक्त कटे और उदासी न रहे।"

डाक्टर साहबने एक क़िस्सा शुरू किया। उनका सहपाठी एक लडका 'टी बी स्पेशियलिस्ट' होना चाहता था। इस रोग-विशेषके संबधमें पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त करनेकी धुन उसके सिरपर बड़ी बुरी तरहसे सवार हो गई। उसके अध्यक्षके पास जो-जो 'केस' आते थे वह मनन-पूर्वक उनका अध्ययन किया करता था। इस रोगके कीटाणुओंको अच्छी तरहसे पहचाननेके लिये वह नित्य अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा बड़े ध्यानके साथ रोगियोंके श्लेष्मा और रक्तकी परीक्षा किया करता था। होस्टलमें उसके साथी जितने भी लडके थे वह हरवक्त मौका पाते ही उनके सारे शरीरमें हाथ लगाकर 'टी बी ग्लैंड' की खोज किया करता था। इस रोगके संबधमें अनेक तथ्योंका अध्ययन करने

पर और अनेक 'केस' देखनेपर उसे धीरे-धीरे अपने संबंधमें भी वहम हो गया और वह रोज़ अपना 'टेंपरेचर' लेने लगा और नित्य अपनी नाड़ीकी गतिकी परीक्षा करने लगा। कीटाणुके भयसे पानी अपने सामने 'फिल्टर' कराके पीता था। रोटी, मक्खन और दूधके अतिरिक्त और सब प्रकारका खाना उसने त्याग दिया। बहुत हुआ तो कुछ फल खा लेता था। भगवानका ऐसा कोप हुआ कि उसका टेंपरेचर किसी कारणसे बढ़ गया। तब तो वह ऐसा घबराया कि तत्काल अपने अध्यक्षके पास जाकर उसने अपने शरीरकी परीक्षा करवाई। अध्यक्षके यह कहने पर भी कि उसे यक्ष्मा नहीं है, उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने अपने श्लेष्माकी परीक्षा स्वयं की। उसमें उसे 'कीटाणु' दिखलाई दिए। कॉलेजसे छुट्टी-लेकर वह घर गया और 'कम्प्लीट रेस्ट' करने लगा। चौबीसों घंटे वह चारपाईपर लेटे रहता और बिल्कुल हिलता-डुलता न था। मौतको बुलाने पर वह तत्काल उपस्थित होती है, यह बात प्राचीन दतकथाओंमें पाई जाती है। उसका भी यही हाल हुआ। धीरे-धीरे वह क्षयीभूत होने लगा और उसका शरीर क्षीण होता चला गया। अंतको छ महीनेके अंदर काम तमाम!"

२२

यह किस्सा डाक्टर लोगोंके लिये भले ही दिलचस्प हो, पर विषाद और विरह-व्यथासे म्लान आजकी सन्ध्यामें मृत्युकी भीतिसे पूर्ण इस कथासे मेरा सुकुमार और दुर्बल हृदय त्रस्त कपोतकी तरह कांपित होने लगा। लीलाका भी शायद यही हाल था। उसने कहा—"यही क्या आपका दिलचस्प किस्सा है? डाक्टर लोगोंको मरनेकी बातोंमें बड़ा आनंद मिलता है। आप लोगोंका दिल बड़ा सख्त होता है, इसमें शक

नहीं। अपने सहपाठीकी मौतका समाचार पाकर आपको बड़ी प्रसन्नता हुई होगी।" यह कहकर वह चलने लगी।

मैंने कहा—"लीला, बैठती क्यों नहीं। अरी, जाती कहाँको है।"

वह बोली—"तुमने जो 'नाविल' मुझे उस रोज दिया था, उसे अभी मैंने पूरा नहीं किया। जाकर उसीको पढ़ती हूँ।"

यह कहकर वह चली गई।

बाहर अभी थोड़ा-बहुत उजेला था, पर भीतर अँधेरा होने लगा था डाक्टर साहब और मैं उस कमरेमें अकेले थे। नाना भावनाओंके कारण मेरा मस्तिष्क ठिकाने नहीं था। संध्याकालकी इस विशेष घडीमें ही कोई अलौकिक माया वर्त्तमान रहती है या मेरी ही मानसिक अवस्था उस समय विकृत हो गई थी, मैं निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकती पर एक प्रकारकी अभूतपूर्व चचलतासे मेरा हृदय आदोलित होने लगा दिन-भरके विषादसे इस चंचलताका कोई सबध नहीं था। मैं सुख-दुःख और जीवन-मृत्युके अतीत आनदकी एक अनिर्वचनीय चेतनाका अनुभव करने लगी। ऐसा मालूम करने लगी जैसे इस मायामय स्वल्पांधकारकी हलकी छायामें मैं डाक्टर साहबके साथ वेमालूम अन्तर्धान होकर सौंदर्य और प्रेमके किसी अभिनव लोकमें निर्भय और निर्द्वंद्व होकर विचर सकती हूँ और इसीमें ही मेरे छिन्न-विच्छिन्न, भ्रष्ट जीवनकी सार्थकता है कोई अज्ञात प्रेरणा मेरे कानोंमे कहने लगी—"जीवनके रात-दिनके झझट और भय-सशयसे मुक्त होनेका केवल यही क्षणिक समय है यदि किसी नव-जीवनकी आशामें मरना है तो इसी समय मरो अथवा चिराधकारके गहन गह्वरमें सदाके लिये विलीन होना है तो इसी समय होओ—यदि यह समय गया तो जन्म जन्मातरमें तुम्हें छिन्न मेघकी तरह आकाशमें व्यर्थ और निरुद्देश्य भटकना पडेगा।"

मेरा सर्वांग कंपित हो रहा था और वत्तीका बटन दबानेका साहस नहीं होता था। कमरेके अंधकारको भेदकर साध्य-गहनके अस्पष्ट और अस्फुट प्रकाशकी स्तिमित रेखाएँ हम दोनोंके मुखोंपर छायाकी मायाका खेल खेल रही थीं। हम दोनों स्तब्ध और निःशब्द थे। अकस्मात् डाक्टर साहबने अपने पैरोंसे मेरे पाँवोंको स्पर्श किया। मेरे सारे शरीरमें एक बिजली-सी दौड़ गई। मेरे रक्तमें उन्मत्तता व्याप्त हो गई। मैंने अपनेको सँभालनेकी चेष्टा की। क्षण भरमें सहस्र भावनाएँ मेरे मस्तिष्कसे होकर गुजर गईं।

अचानक मुझे अपने शांत, उत्तेजना-विहीन बाल्य-जीवनकी याद आई। उस मधुर और प्यारी स्मृतिसे मेरे रक्तका उत्ताप धीरे-धीरे शीतल होने लगा, और उस शीतलताकी करुणासे मेरा हृदय गद्‌गद हो-गया। इतने अल्प समयमें मेरे हृदयाकाशमें एक भयंकर तूफान उठकर अंतको शांतिके साथ गंभीर मेघोंका श्रांत वर्षण भी हो गया। किसी अज्ञात कारणसे मेरे स्मृति-पटलमें मेरे जीवनके एक ऐसे दिनका चित्र अंकित हुआ जब खूब जोरसे पानी बरसनेके बाद पूर्वाकाश इन्द्रधनुषकी मनोहर छटासे विभासित हो गया था, पत्तोंके झुरमुटोंसे होकर जलकण सूर्यके प्रकाशमें मुक्ताकी तरह नीचेको टपकते जाते थे और मैं अपने भावी जीवनके उल्लासमें बाहर बगीचेमें बिना किसी कारणके इधर-उधर दौड़ रही थी। आजकी मानसिक स्थितिसे इस घटनाका क्या संबंध था, ठीक बतला नहीं सकती। पर इस स्मृतिके उदित होते ही मेरी आँखें उमड़ चलीं। उस अस्पष्ट आलोकमें भी शायद डाक्टर साहबने मेरे आँसुओंको झलकते देख लिया। मेरा हाथ पकड़कर बोले—“ लज्जा ! ”

पुलकित होनेके कारण मेरा गला रूँध गया था। बोलनेसे मेरी कमजोरी पकड़ी जायगी, इस ख्यालसे मैं चुप रही।

मैं अपने पलँगपर बैठी हुई थी। डाक्टर साहब मुझे निरुत्तर देखकर या अन्य किसी कारणसे चट अपनी कुर्सी परसे उठकर मेरे साथ ही मेरे पलँगपर बैठ गए और गलेमें हाथ डालकर धीमे स्वरमें बोले—" चुप क्यों हो ? "

मैं रह न सकी और उनकी गोदमें मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर बेअख्तियार रोने लगी। कुछ देरके बाद जब मेरा सिसकना बंद हो गया तो मैं फिर भी उसी अवस्थामें उनकी गोदके ऊपर अपना सिर रक्खे रही। आकुल मोहके कारण उस स्थितिसे हिलने-डुलनेकी शक्ति भी मुझमें नहीं थी।

अचानक बाहरसे चिर-परिचित कंठस्वर वायुमंडलको तीरके समान चीरता हुआ मेरे कानोंमें पहुँचा—" दीदी ! "

इस शब्दसे मेरा हृदय गूँजते ही राजू दरवाजेपर आकर खड़ा हो गया। मैं हड़बड़ाती हुई सँभलकर उठ बैठी। एक झलक देखकर राजू उलटे पाँव लौट चला।

२३

कलेजेका धड़कना, शरीरका थरथराना, धरतीमें समा जानेकी इच्छा रखना, आदि कई ऐसे प्रचलित और निर्दिष्ट मुहावरे हैं जिनका उपयोग मैं अपनी उक्त स्थितिका वर्णन करनेमें कर सकती हूँ। पर क्या इन मुहावरोंसे सचमुच पाठक उस घोर अनर्थका, इस चिर-दुर्भागिनीके जीवनके उस जटिलतम संकटसे संकुल स्थितिका यथार्थ अनुभव करनेमें समर्थ हो सकेंगे ?

जरा एक बार चित्तवृत्तिको एकाग्र करके कल्पना कीजिए। मान लीजिए आप एक नव-युवती हैं। आप किसी पुरुषके प्रणय-पाशमें हैं। आपसे छोटा आपका एक भाई है जिसकी असहनशील

प्रकृतिके कारण अप्रसन्न होने पर भी आप उसे प्यार किए बिना नहीं रह सकते। उसके उन्नत स्वभावके गांभीर्यके कारण आपके हृदयमें उसके प्रति सम्भ्रमका भाव भी वर्तमान है। पर जिस पुरुषसे आपका प्रेम है उसे आपका यह भाई किसी विशेष कारणसे अत्यंत घृणाकी दृष्टिसे देखता है, और फलतः वह नहीं चाहता कि उसकी बहन ऐसे पुरुषको चाहे। पर बार-बार वह आपको उसी घृणित और अनिच्छित पुरुषके साथ देखता है, और इसी कारण भाई-बहनके चिर-जीवनके गाढ़े स्नेहमें विघ्न आ उपस्थित होता है। अंतको एक दिन संध्याके प्रायांधकारमें आपका वही भाई आपको एक स्तब्ध कमरेके भीतर उसी पुरुषकी गोदमें लेटे हुए पाता है और एक झलक देखकर लौट जाता है।

किसी ग्रीक उपाख्यानमें मैंने पढ़ा था कि गॉर्गनका मुख देखते ही दर्शक तत्काल प्रस्तर बन जाता था। राजूका पलक-पात अंधकारके कारण अस्पष्ट होनेपर भी उससे मैं पत्थरसे अधिक जड़, मृत और निर्जीव बन गई। वज्र-स्तमित-सी होकर कुछ देर तक बिलकुल संज्ञाशून्य बैठी रही। जब कुछ चैतन्य हुआ तो मुझे उन्मादने आ घेरा। मैं जोरसे चिल्लाना चाहती थी और अपने बालोंको नोचनेकी इच्छा होती थी। कुछ ही देर पहले डाक्टर साहबके स्पर्शसे मैं रोमांचित हो रही थी। अब उनके शरीरको छूकर बहनेवाली वायुके भी स्पर्शसे और उनके निःश्वा-सने उत्कट वितृष्णा और नारकीय घृणाके कारण मेरा हृदय आलोड़ित होने लगा। डाक्टर साहब अभी तक मेरे पलँगपर ही बैठे थे। मैंने धीमे स्वरमें तीव्रताके साथ कहा—" डाक्टर साहब, आप जाइए। मेरा सर्वनाश होना था सो हो गया। अब आप जाइए! " उस अंधकारमें शायद मेरी आँखोंकी चिनगारियाँ साफ दिखलाई दे रही थीं। भीत होकर डाक्टर साहबने पूछा—" क्यों? "

उन्हें यह घटना बिलकुल साधारण जान पड़ती थी। हाय री पुरुषोंकी निर्बोधिता ! मैंने तमककर कहा—" नहीं, नहीं, आप फौरन यहाँसे उठकर चले जाइए ! " यह कहकर मैंने बत्तीका बटन दबा दिया। सारा कमरा प्रकाशसे जगमगाने लगा।

क्रोधित और अपमानित होकर वह चट-से अपनी साहबी टोपी और ' ह्विप ' पकड़कर उठ खड़े हुए और लाल-लाल आँखोंसे एक बार मुझे घूरकर सीधे चल दिए। अपमानित प्रेमकी प्रतिहिंसाका भाव उनकी उत्तप्त आँखोंमें स्पष्ट झलकते हुए दिखलाई दिया था। पर इस बातपर विशेष ध्यान देनेकी स्थिति उस समय मेरी नहीं थी। आज दिनके समय रामायण पढ़ा था। मुझे बार-बार वही पद याद आता था—" तदा मे माधवी देवी विवर दातुमर्हति।"

२४

रातको खाना खानेकी रुचि बिलकुल नहीं थी। पर न खानेसे नौकर-चाकरोंके मनमें संदेह उत्पन्न होगा और हठ तथा अनुरोधका अभिनय सहन करना पड़ेगा, इस कारण मैंने अपने ही कमरेमें खाना लानेका ' आर्डर ' दे दिया। थोड़ा-बहुत खाकर लेटनेकी तैयारी कर ही रही थी कि लीलाने किवाड़ खटखटाते हुए कहा—" दीदी, खोलो ! "

मैं नित्य लीलासे अपने साथ सोनेका अनुरोध किया करती थी। पर आज उसके आनेसे मुझे बिलकुल प्रसन्नता नहीं हुई—मेरी एकांत-चिंतामें विघ्न ही हुआ। लीला नित्यकी तरह प्रसन्न, निश्चित और निधड़क थी। बोली—" दीदी, आज बड़ी जल्दी सोनेकी तैयारी करने लगी हो ! "

मैंने मुरझाई हुई आवाजमें कहा—"हाँ, आज नींदने बड़ा जोर पकड़ा है।"

लीला नित्यकी तरह हँसी-खुशीकी बातें करनेके लिये लालायित हो रही थी, मेरी इस बातसे उसका मुख म्लान हो आया। मन मारकर वह अपने पलँगपर जाकर लेट गई।

मेरे मस्तिष्ककी नसें बहुत उत्तेजित हो रही थीं। कितनी ही बातें सोचना चाहती थी, पर कुछ भी ठीक तरहसे नहीं सोच सकती थी। फिर भी एक बात रह-रहकर मेरे हृदय और मस्तिष्कमें एक साथ ही काँटेकी तरह चुभ रही थी। वह यह कि मैं कलसे राजूको अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी? डाक्टर साहबके साथ अकेले बैठे मुझे राजूने बहुत बार देख लिया था, इसमें संदेह नहीं। पर आजकी बात ही बिलकुल दूसरी थी। आज मैं अपनी सफाईमें किसी प्रकारकी कैफियत नहीं दे सकती थी। मैंने सोचा—"राजूके हृदयमें यदि किसी जघन्यसे भी जघन्य बातका संशय उत्पन्न हो तो मैं उसके निवारणके लिये एक अक्षर भी किस मुँहसे निकाल सकती हूँ? यद्यपि भगवान्‌की कृपासे मैं अब तक शारीरिक पापसे बची हूँ, तो भी आजकी स्थितिके कारण कैसे राजूको इस बातका विश्वास दिला सकती हूँ? भगवान्! मेरे लिये कोई भी उपाय तुमने नहीं रख छोड़ा!" सोचते-सोचते मैं प्रबल वेदनासे छट-पटाने लगी और उत्कट मानसिक व्यथाके कारण मेरे मुँहसे बेअख्तियार कराहनेकी तीखी आवाज निकल पड़ी।

आवाज सुनकर लीला चौंककर उठ बैठी और उसने घबराकर पूछा—"दीदी, क्या हुआ?"

मैंने कहा—"कुछ नहीं हुआ भैना, तू सो जा। चिंताकी कोई बात नहीं।"

पर वह वहुत डरी हुई थी, इसलिये कुछ देर तक बैठी रही। वह शायद चाहती थी कि मैं उसके साथ वातें करूँ। पर मैं चुप रही। लाचार होकर वह फिर लेट गई।

मुझे वहुत देर तक नींद नहीं आई। दो वजे तक गिर्जेकी घडीमें घटोंके वजनेका शव्द सुनती रही। दो बजेके वाद आँखें लगीं। आँखें लगते ही कितने ही अर्थहीन, अस्पष्ट और भयकर स्वप्नोंसे मेरा मस्तिष्क आच्छन्न हो गया। उन अस्पष्ट स्वप्नोंके बीच भी एक स्पष्ट अर्द्ध-वाक्य मेरे मुँहसे निकलता जाता था—"विवर दातुमर्हति—विवर दातुमर्हति!" थोडी देर वाद नींद उच्चट गई। फिर आँखें लगीं और फिर उसी प्रकारके विकट स्वप्न दिखाई देने लगे। फिर आँखें खुलीं, फिर आँखें लगीं। सारी रात इसी तरहकी वेचैनीमें कटी। पर सुवहको वड़ी मीठी और गाढ़ी नींदने मुझे धर दवाया। नौ वजेके करीव आँखें खुलीं।

२५

वाह्य जगत्के अधकार और प्रकाशका अतर्जगत्से वडा भारी सवध रहता है। निगत रात्रिके अधकारमें मुझे अपनी स्थिति अत्यत जटिल और विकट मालूम होती थी, पर प्रात कालके उज्ज्वल प्रकाशमें मुझे आशातीत सात्वना प्राप्त हुई। मैंने सोचा—"कल रातकी घटना उस क्षणके लिये चाहे कैसी ही भयकर क्यों न हो, पर वास्तवमें उसके कारण अधिक चिंतित होनेकी कोई वात नहीं है। इसमें सदेह नहीं कि राजूके हृदयमें उस समय वड़ी गहरी चोट पहुँची होगी, पर अभ्यासवश वह धीरे-धीरे उस वातको भूल जायगा। इतनी वार उसने मुझे डाक्टर साहवके साथ अकेले वैठे देखा है, और जितनी वार देखा है उतनी वार वह नाराज हुआ है, पर फिर-फिर इस वातको भूलकर

यह 'दीदी' कहके पुकारता हुआ मेरे पास आया है। मेरा ऐसा उदार और बुद्धिमान भाई अबकी वार भी दो-एक दिनमें कलकी वात भूल जायगा और मन-ही-मन मुझे क्षमा करके मेरे पास अपना स्नेहसे भरा हुआ प्यारा मुखड़ा लेकर चला आयगा।"

आशासे भरी यह वात सोच-सोचकर मैं उल्लसित हो उठी और मेरी सारी दुश्चिंता किसी जादूके स्पर्शसे तिरोहित हो गई।

प्रातर्भोजन मैंने अपने ही कमरेमें किया। लीलाने शायद राजूके ही साथ खाना खाया। खाना खाकर लीला स्कूलको चली गई। तबियत ठीक न होनेसे मैं घरपर ही रही। एक किताब खोलकर पढ़ने लगी। दो-चार पेज भी न पढ़ पाई थी कि आँखें झपने लगीं। किताब बंद करके पलंग-पर लेट गई। तत्काल प्रगाढ निद्रामें मग्न हो गई। प्राय एक घंटेके बाद आँखें खुलीं। पर सारे शरीरमें ऐसी थकावट जान पडती थी जैसे किसीने मार-मारकर मेरी हड्डियाँ तोड डाली हों। आलस्य, दुर्बलता और जडता-के कारण उठनेकी शक्ति मुझमें नहीं थी। इसलिये लेटी रही। फिर नींद आ गई।

अबकी वार जब आँखें खुलीं तो दिन ढल चुका था। गत रात्रिमें जिस भीषण भीतिका अनुभव मैंने किया था, वह अब फिर धीरे-धीरे जागरित होने लगी। प्रात काल मैंने समझा था कि मेरा भय अमूलक और व्यर्थ है। पर मैलेरिया बुखार जिस प्रकार बीचमें टूटकर फिर-फिर नियत समयमें धर दवाता है उसी प्रकार अंधकारके धीरे-धीरे बढ़ते ही पिछले दिनकी आशंका उदित होने लगी। मैंने सोचा—" कल सन्ध्या-के समय जो घटना हो गई है, वह किसी प्रकार भी साधारण नहीं थी। राजूके साथ मेरा जो विच्छेद हो गया है वह अब जीवन-भर स्थायी रहेगा। राजू अब कभी मेरा मुँह देखना नहीं चाहेगा। वह अब किसी

तरह नहीं मनाया जा सकता। इस घटनासे मेरा जीवन कलंकित लांछित और निरर्थक हो गया है।"

ऐसी स्थितिमें स्त्रियोंमें बहुधा आत्मघातकी प्रवृत्ति जागरित होती है। पर मेरे हृदयमें मरनेकी इच्छा लेशमात्र भी उत्पन्न नहीं होती थी। मरनेकी इच्छा तो दूर रही, मृत्युकी कल्पना ही किसी भी रूपमें मेरे मनमें जागरित नहीं हुई। पर मेरा भावी जीवन निरानदमय है, इस विश्वासके कारण मुझे शून्यके अवसादने आ घेरा। काका और अम्माँ घर-पर नहीं थे, डाक्टर साहबके साथ अनबन हो गई थी और राजूकी आँखोंका तो मैं काँटा ही बन चुकी थी। अपने जले दिलके फफोले मैं किसके आगे फोड़ती! मेरी उस दशाका केवल अनुभव ही किया जा सकता है, वह समझाई नहीं जा सकती।

डाक्टर साहब आज नहीं आवेंगे, यह बात मैं अच्छी तरह जानती थी, पर एक क्षीण आशा भी मेरे मनमें वर्त्तमान थी। प्रतीक्षा करते-करते अँधेरा हो आया और खानेका समय आ गया। पर उनका आना असभव था और वह आए भी नहीं। भयकर निराशा छा गई। यदि वह सचमुच आ गए होते तो मुझे प्रसन्नता होती, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बल्कि सभव तो यही था कि उनके आनेपर मैं अधिक सशकित हो उठती। पर फिर भी उनके न आनेसे निराशा ही हुई।

रातको फिर नींदका वही हाल रहा और बीच-बीचमें तद्रा आनेपर उसी प्रकारके विकट स्वप्न दिखलाई दिए।

दूसरे दिन सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशमें मैं फिर आशान्वित हो उठी और पहले दिनकी ही तरह, रातकी सारी दुश्चिता दूर हो गई। केवल एक बातके लिये मैं बहुत पछताने लगी। वह यह कि क्षणिक उत्तेजनाके कारण बुद्धिभ्रष्ट होनेपर मैंने डाक्टर साहबको अपमानित करके निकाल

दिया था। जिनको लेकर ही मेरा जीवन था, उन्हींके साथ मेरा संबंध टूट गया। मैंने सोचा—"राजू तो मेरा ही भाई है—कभी-न-कभी उसके साथ समझौता होगा ही। पर तिरस्कृत प्रेमीको अब किस प्रकार मना सकती हूँ?" पश्चात्तापका यह काँटा मेरे मनमें गडा ही रहा।

दिन-भर मेरी भावनाओंमें उलट-फेर होता रहा। कभी एक बात सोचती थी; कभी ठीक उसका उलटा। अँधेरा होते ही फिर मेरा दिल आशंकाके कारण दहलने लगा। इसी प्रकारके चक्रमें चार दिन बीत गए। न राजूके ही भावमें कोई परिवर्त्तन दिखलाई दिया और न डाक्टर साहबके ही दर्शन हुए।

२६

पाँचवें दिन काका अम्मोंके साथ वापस चले आए। मेरी जानमें जान आई और चित्त कुछ स्थिर हुआ। उनके घर पहुँचते ही मैं कान्फ्रेंसके सब समाचार पूछने लगी। क्या-क्या प्रस्ताव पास हुए, हिंदू-मुस्लिम विरोधकी समस्याका समाधान किस प्रकार किया गया, विदेशी-बहिष्कारके संबधमें किन-किन नए उपायोंकी खोज हुई, इत्यादि और भी कई प्रश्न मैंने किए। काकाने अत्यंत स्नेह और धैर्यके साथ मुझे सब बातें समझाई। इन सब बातोंको जाननेके लिये मैं बडी उत्सुक थी, सो नहीं। पर चार दिनके विच्छेदके बाद आज काकाको पाकर उनसे बातें करनेके लिये मैं आकुल हो रही थी।

जब कान्फ्रेंसके संबधमें सब बातें हो चुकीं तो काकाने पूछा—"राजू कहाँ है? वह नहीं दिखलाई देता।"

लीला वहींपर थी। उसने कहा—"भैयाकी तबियत आज तीन-चार दिनसे खराब है। मैं कितनी ही बार उनके पास गई हूँ, पर वह

कोई वात मेरे साथ नहीं करते। पलँगपर लेटे-लेटे उपनिषत् या इसी तरहकी कोई किताव पढ़ते हैं और मुझसे कह देते हैं कि मेरी तवियत ठीक नहीं है। क्या हुआ, वुखार है या नहीं यह कुछ नहीं वतलाते।"

काकाने शंकित होकर मुझसे पूछा—"क्या हुआ, तुम्हें कुछ मालूम है ?"

मैं क्या जवाव देती ! राजू पलँगपर लेटे-लेटे अपनी तवियत खराव वतलाता है, यह वात भी मुझे मालूम नहीं थी। और जो एक कारण मुझे मालूम था उसे मैं वतलाती कैसे !

मैंने कहा—"मुझे तो कुछ भी खवर नहीं।"

काकाके चेहरेमें उनके स्वाभाविक व्यंगका तीक्ष्ण भाव प्रस्फुटित हो उठा। वोले—"भाईके लिये वहनका प्रेम हो तो ऐसा हो। तीन दिनसे वह पलँगपर लेटा है, और तुम्हें अव तक खवर नहीं कि क्या हुआ ! खूव !"

उनकी आँखोंमें स्नेहपूर्ण तिरस्कारकी छाया घनीभूत होने लगी। मैं उनकी ओर ताक न सकी और गुरुतर अपराधके भारसे दवकर मैंने सिर नीचा कर लिया।

उसी दम उठकर काका राजूका हाल मालूम करने चले। अम्माँ और लीला भी उनके साथ हो लीं। मैं पीछे-पीछे दवे पाँव अपराधिनीकी तरह धड़कता हुआ कलेजा लेकर चलने लगी। राजूके कमरेमें जव हम लोग पहुँचे तो देखा कि कमरा खाली पड़ा है। राजू वहाँ नहीं था।

लीला ने कहा—"कुछ ही देर पहले तो भैया यहीं थे। अभी-अभी न मालूम कहाँ चले गए !"

सवको आश्चर्य हुआ। नौकरोंने घर-भरमें ढूँढ़ा, ऊपर छतपर जाकर देखा, वगीचेमें तलाश की, पर कहीं पता न चला। कोई मोटर या

फिटन भी वह साथमें नहीं ले गया था। काकाके आनेका समाचार सुनकर ही क्या वह कहीं चपत हो गया ? काका और अम्माँका आगमन क्या उसे सचमुच इतना अखरा ? यह आश्चर्यकी ही बात थी, इसमें संदेह नहीं।

हम लोग सब चकित होकर लौट चले। पर काकाको शायद यह जानकर तसल्ली हुई कि राजू पलंगपर लेटे रहनेको बाध्य नहीं है। आनंदपूर्वक हँसकर बोले—"तबियतके खराब होनेका यह ढग बिल्कुल नया है! मरीजका पलंगपर लेटे रहना तो दूर रहा वह कमरेसे ही गायब है!"

राजूका स्वास्थ्य सुदृढ और असाधारण था। साधारणत उसकी तबियत खराब होनेकी बातपर कोई विश्वास नहीं करता था। इसका एक कारण यह भी था कि वह किसी कारणसे रुष्ट होनेपर झूठमूठ अपनी तबियत खराब बतला देता था। सब लोगोंको यह बात मालूम थी। काकाने शायद आज भी यह अनुमान कर लिया कि वह किसी कारणसे नाराज है। इसलिये उसकी अस्वस्थताकी बात हँसीमें उड़ा दी।

पर मेरा हृदय किसी अज्ञात आशंकासे रह-रहकर बड़े जोरोंसे धड़क रहा था और किसी तरह शांत नहीं होता था।

२७

रातको भोजनके समय हम लोग बहुत देर तक टिके रहे, पर राजू नहीं आया। कहाँ गया, इस बातका भी पता नहीं चलता था। जाड़ेके दिनोंमें राजू रातको सात बजेके बाद कभी घरके बाहर कहीं नहीं रहता था—पेश्तर ही घर पहुँच जाता था। आज यह नई बात थी। जब बहुत देर तक टिके रहनेके बाद भी नहीं आया तो

और उसके आनेपर उसने फाटक बंद कर दिया था। फाटक बंद होनेके कुछ ही देर बाद राजूका कमरा खुलने और फिर बंद होनेकी आवाज़ आई। मुझे पूरा विश्वास हो गया कि राजू आ गया है और मेरी दुश्चिंता बहुत कुछ दूर हो गई।

मस्तिष्कका भार हल्का होनेसे मेरी आँखें झपने लगीं। निद्रा और जागरणके बीचमें एक अवस्था होती है। धीरे-धीरे मैं उसी अवस्थाको प्राप्त हो गई। कितनी देर तक यह अवस्था रही, ठीक बतला नहीं सकती। अचानक बन्दूकके चलनेकी-सी एक धड़ाकेकी आवाज सुनाई दी और मैं चौंक पड़ी। अपने कमज़ोर दिलकी वह हालत मैं कैसे लोगोंको समझाऊँ। ऐसा माल्रम होने लगा जैसे अभी मेरे हृदयकी गति रुककर दम निकलनेको तैयार है।

क्या हुआ, आवाज कहाँसे आई, कुछ माल्रम नहीं हुआ। मैं बड़ी उत्कंठासे इस बातकी बाट जोहती रही कि संभवत कोई नौकर मेरे पास आकर इस रहस्यका मर्मोद्घाटन कर जायगा।

प्राय पंद्रह मिनटके बाद राजूके कमरेका किवाड़ खुलनेका शब्द फिर सुनाई दिया और तत्काल ही किसीके चीखनेकी आवाज आई। वह निकट आर्तरव सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। सारे शरीरका रक्त सूख गया। माजरा क्या है, यह बात कुछ भी समझमें नहीं आती थी।

थोडी देर बाद किसीने आकर बाहरसे मेरे कमरेका किवाड खटखटाया। भीत होकर मैंने पूछा—" कौन है ?"

काकाके 'पर्सनल एसिस्टेंट' गौरीशंकर दुबेकी आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने कहा—" लज्जा, उठो, किवाड़ खोलो, सर्वनाश हो गया है।"

" क्या हुआ ?" कहकर मैं रोती हुई पलँगपरसे उठ बैठी और खिड़की खोल दी।

"राजूने अपनी छातीमें गोली मारकर आत्महत्या कर डाली है!" कहकर दुबेजी बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रोने लगे।

वज्र-स्तंभित होकर मैंने कहा—"ऐं! यह आप क्या कहते हैं दुबेजी!"

मुझे चक्कर आने लगा था इसलिये मैं दीवारके सहारे खड़ी हो गई।

दुबेजीने कहा—"क्या कहूँ! कहने-सुननेकी कोई बात अब नहीं रही। लीला! अरी लीला!" कहकर वह लीलाको जगाने लगे। राजूके कमरेसे अम्माँके रोने-चिल्लानेकी दिल दहलानेवाली आवाज सुनाई दे रही थी।

लीला गाढ़ निद्रामें मग्न थी। जब दुबेजीने हाथसे धक्का दिया तो वह हड़बड़ाती हुई उठ बैठी।

"क्या हुआ, दुबेजी?"

"राजू चल दिया।" दुबेजीका गला काँप रहा था।

लीलाने घबराकर पूछा—"कहाँको?"

"उसने अपनेको गोली मार ली।"

यह कहकर भावावेग न रोक सकनेके कारण दुबेजी फिर एक बार व्याकुल होकर रो पड़े।

"भैया, क्या किया! भैया! भैया!" कहकर रोती, चिल्लाती और सिर पीटती हुई लीला बावली-सी होकर पलँगपरसे नीचे कूद पड़ी।

दुबेजीके साथ अर्द्धचेतनावस्थामें दुर्घटनाके स्थलपर पहुँचकर देखती क्या हूँ कि राजू—मेरा प्यारा भाई, हमारे कुटुम्बका एक मात्र गौरव राजू—नीचे फ़र्शपर हाथ-पाँव पसारकर मृतावस्थामें [illegible] और उसके कपड़े उसकी छातीके खूनसे तर [illegible] नीचे [illegible] पड़ी हुई थी। अम्माँ सिर [illegible] रखकर

हाय-हत्या मचाकर रो रही थीं । काका निर्विकार भावसे ऊपर खड़े-खड़े भाग्य-नियताकी यह निष्ठुर लीला देख रहे थे । कुछ कहनेकी, किसीको कुछ समझाने-बुझानेकी शक्ति उनमें नहीं थी । लीला आते ही यह सब दृश्य देखकर, धरतीपर पछाड़ खाकर, अपने विदीर्ण क्रंदनसे नैश-वायुको चीरकर कहने लगी—" भैया ! यह अनर्थ क्या हुआ भैया ! मैं अब क्या करूँ भैया ! भैया ! भैया !—"

अर्द्धरात्रिके उस विकट भौतिक काडकी विभीषिकाका वर्णन मैं किस प्रकार करूँ ? यह बात मेरे सामर्थ्यके बाहर है । इसलिये इस सबधमें कुछ लिखना ही वृथा है ।

मुझे रोना नहीं आ रहा था । मैं स्वप्नावस्थाकी तरह, विभ्रात आँखोंसे केवल राजूकी ओर देख रही थी । कभी खूनसे तर उसकी सुदृढ छाती-पर दृष्टि डालती और कभी उसके चैतन्यविहीन, सुदर, शात और प्रसन्न मुखमंडलके प्रति टकटकी बाँधे रहती ।

धीरे-धीरे मेरा मस्तिष्क निर्जीव-सा होने लगा और सिरमें चक्कर आने लगा । मैं मूर्च्छित होकर नीचे गिर पडी ।

२८

जब आँखें खुलीं तो मैंने अपनेको उसी अवस्थामें, वहीं नीचे फर्शपर, पड़े पाया । स्पष्ट ही मालूम हो गया कि किसीने मुझे जगानेकी चेष्टा नहीं की, किसीको लेशमात्र भी मेरी चिंता नहीं हुई । इस महाशोकमें सारा कुटुब मग्न था उसके आगे मेरी मूर्च्छा—मेरी मृत्यु तक नगण्य थी । ' रिवाल्वर ' तो वहींपर पड़ा था, एक-आध गोली उसमें अवश्य ही बची होगी । तब क्यों काकाने मेरी छातीपर तत्काल गोली नहीं चलाई ? इस पापिनी, कुलखोरिनी, हत्यारी लड़कीकी मूर्च्छाके

प्रति उत्कट अवज्ञा प्रकट करके उन्होने उचित ही किया था—पर चिर-कालके लिये उसका अस्तित्व ही मिटा देनेमें क्यो कोई बात उठा रक्खी?

अम्माँ और लीलाका रोना अभी तक उसी प्रकार जारी था। राजूकी मृतदेहको घेरकर अभी तक लोग उसी प्रकार खड़े थे। मूर्च्छा भग होनेपर निहायत कमजोरीके कारण मुझमें उठनेकी न तो शक्ति ही थी और न इच्छा। मुझे फिर स्मरण हो आया कि जो आतककारी घटना आज हो गई उसके वाद अव मरने, मूर्च्छित होने, बैठने और उठनेमें कोई भेद ही नहीं रह गया है—ससारकी समस्त क्रियाएँ शून्य-की गाढतम काली छायासे आच्छन्न होनेके कारण एक रूपमें परिणत हो गई हैं। यह बात सोचते-सोचते फिर मेरा मस्तिष्क धीरे-धीरे विह्वल हो आया, और मैं फिर एक बार मूर्च्छित हो गई।

दूसरी बार आँखें खुलनेपर भी मैने अपनेको उसी अवस्थामें पाया। किसीने मुझे उठाकर पलँगपर नहीं रक्खा था। इस बातके लिये मेरे मनमें दु ख बिलकुल भी नहीं हुआ और न किसीके प्रति अभिमानका भान ही उत्पन्न हुआ।

रात बीत चुकी थी, उजाला हो गया था। लोग उसी तरह खडे थे। पुलिसके दो-एक आदमियोंकी लाल पगडियाँ देखनेमें आईं। "हा राम!" कहकर मैं प्रबल चेष्टा करके उठ खडी हुई।

'पोस्ट मार्टम' हो रहा था। पुलिसमें शायद पहले ही खबर भेज दी गई थी। इस समय 'रिवाल्वर' को लेकर विवाद मचा हुआ था। असहयोगी होनेके कारण काकाकी सभी बदूकों और 'रिवाल्वरों'के लाय-संस जब्त किए गए थे। लायसंस जब्त होनेके बाद भी यह 'रिवाल्वर' कहाँसे आया, इस बातपर विवाद चल रहा था।

काकाने राजूके हाथका लिखा एक कागज दिखलाया। पीछे मुझे माल्म हुआ कि राजू अपने जिस मित्रसे 'रिवाल्वर' माँग लाया था उस कागज़में उसका उल्लेख किया गया था। रिवाल्वर और कागज़ पकड़कर पुलिसवाले विदा हुए। जो डाक्टर महाशय परीक्षाके लिये आए थे वह भी चल दिए। उन लोगोंके जानेपर काकाकी आँखोंसे दो-एक बूँद आँसूके टपक पडे। इसके पहले उन्होंने अभी तक एक बूँद आँसूका नहीं गिराया था।

जो कागज़ पुलिसवाले ले गए थे, उसमें राजूने क्या क्या बातें लिखी थीं—कोई बात मेरे सम्बंधमें भी थी या नहीं, यह जाननेके लिये मैं विशेष उत्सुक थी। पर किसी तरह यह बात माल्म नहीं हुई। गया! गया! सारे कुटुम्बसे सदाके लिये अपना सबंध तोड़कर वह अब गया!—रह-रहकर मेरे मनमें केवल यही भावना गड़ती जाती थी। मैंने सोचा—"मेरे दुश्चरित्रपर दुःखित, सतप्त और उत्तेजित होनेवाला कोई व्यक्ति अब घरमें नहीं रहा। मै अब जी-भर डाक्टर साहब या अन्य किसी सुरूप पुरुषके साथ आनंदकी बातें कर सकती हूँ—मेरे सुखकी स्वतन्त्रतामें बाधा पहुँचानेवाला जो तीखा कंटक था वह अब निकल गया—अब मैं निर्द्वंद्व होकर विचर सकती हूँ।" पर उस कंटकके निकलनेपर ऐसी तीक्ष्ण वेदना होगी, यह बात पहले कौन जानता था? यह बात मुझे आज माल्म हुई कि कंटककी यह वेदना नारीके हृदयको इतनी प्यारी होती है। हाय, यदि समस्त जीवन यही वेदना मेरे मनमें गडी रहती!

अर्थी तैयार थी। माधवी दीदीके प्यारे भाईकी लाश उसके पतिकी मृत्युके छठे दिन श्मशानको ले जानी पड़ेगी, यह किसने सोचा पर—। भगवान्! मुझे क्या क्षमा मिलेगी?

२९

तमाम शहरमें खबर फैल गई थी। लोग समवेदना प्रकट करनेके लिये एक-एक करके काकाके पास आने लगे। काका हाँ या नहींके अतिरिक्त किसीके प्रश्नका कोई उत्तर नहीं देते थे। वह न मालूम क्या सोच रहे थे, उनका ध्यान न मालूम कहाँको लगा हुआ था! पर यह निश्चित था कि उनके मुखपर शांत और निर्विकार भाव विराज रहा था।

अचानक मैंने आश्चर्यचकित होकर देखा कि डाक्टर कन्हैयालाल प्रोफेसर किशोरीमोहनको साथ लेकर 'ह्विप' को हाथसे इधर-उधर घुमाते हुए तेजीके साथ चले आ रहे हैं। आरंभमें जब डाक्टर साहबसे मेरा परिचय हुआ था तब इसी अवस्थामें, प्रोफेसर साहबके साथ मैंने उन्हें देखा था। तबसे आज प्रोफेसर साहबने हमारे यहाँ पधारनेकी कृपा की थी।

मैं दूरहीसे डाक्टर साहबको एकटक देख रही थी। मैं सोचती थी—"यह वही डाक्टर साहब हैं जिनकी-बदौलत हमारे घरका सर्वनाश हो चुका है। यह वही महाशय हैं जो नित्य नई-नई युवतियोंकी खोजमें रहते हैं, और यह वही हजरत हैं जिन्हें मैंने घृणाकी सनकमें एकबार दुतकार दिया था। पर आज ऐसे घोर अनर्थके बाद भी क्यों रह-रहकर मेरी आँखें उन्हींकी ओर लगी हैं? क्यों उनके रूपका मोह मैं नहीं त्याग सकती? क्यों ऐसे हत्याकाडके बाद भी मेरा जी रह-रहकर उनसे बातें करनेके लिये आकुल हो रहा है? भगवान्! इस दुराचारिणी नारीकी अंतिम गति क्या होनेवाली है!"

मैंने दोनों हाथोंसे अपनी आँखें ढक लीं और डाक्टर साहबको न देखनेका सकल्प किया। डाक्टर साहब भीतर काकाके पास चले गए। मैं अपने कमरेमें आकर बैठ गई। पर रह रहकर मन उनसे मिलनेके लिये चचल हो उठता था। बहुत देर तक मैं द्विविधामें बैठी रही। कितनी ही बार उनके पास जानेके लिये उठी, पर फिर-फिर बैठ गई।

बहुत देर हो गई थी। एक अस्पष्ट विश्वास मेरे मनमें वर्त्तमान था कि डाक्टर साहब अवश्य ही जानेके पहले एक बार मेरे पास आकर मिलेंगे। पर मिलकर क्या करेंगे और मैं क्या बातें करूँगी, इस सबधमें मैंने कुछ नहीं सोचा। कुछ भी हो, आखिर मिनट तक मैं उनके आनेकी आशा अथवा आशका करती रही। पर वह नहीं आए।

संध्या हुई। अँधेरा होने लगा। मृत्युलोकका हाहाकार अपना दल-बल लेकर मेरे कमरेमें डेरा बाँधने लगा। कहींसे कोई आश्वासन, किसी प्रकारकी सान्त्वना मुझे नहीं मिल रही थी। आँसू गिराना वृथा था, हाय-हत्या मचाना निष्फल था। सब शोक-संतप्त थे। किसीको देखकर धैर्य धारण करनेकी आशा ही नहीं की जा सकती थी। सबके ऊपर अचानक सारा आसमान ही टूट पड़ा था। सारे घरका चमकता हुआ सूर्य उठकर शून्यमें विलीन हो गया था। वह विशाल भवन जो जीवन-के उल्लास और राजनीतिक क्रियाओंकी उत्तेजनाके कारण प्रतिक्षण आदोलित और जागरित रहा करता था, आज मृत्युके अंधकारतम गह्वरसे भी अधिक शून्य जान पड़ता था। पर इस बातकी नालिश किससे की जा सकती थी!

उस दिन किसीने खाना नहीं खाया। आँखें बद करके मैं किसी तरह लेटे रही।

इस घोर विपत्तिमें भी मेरे अतस्तलके एक अतरतम कोनेमें यह अस्पष्ट आशा वर्त्तमान थी कि कालकी गतिसे धीरे धीरे एक दिन दु:खका यह घोर अधकार विलीन हो जायगा और जीवनकी नौका फिर पहलेकी तरह आनदकी तरगोंमें वहने लगेगी। धिक्कार है!

३०

दूसरे दिन सुबहको जब आँखें खुलीं, उस समय शायद नौ बज चुके होंगे। आलस्यके कारण मै पलँगपर लेटे-लेटे जम्हाइयाँ और अँगडाइयाँ लेने लगी। अभी उठना चाहिए या नहीं, कुछ देरतक इसी द्विविधामें रही। जो कुछ होना था वह हो चुका, अब वृथा शोक करनेसे क्या होगा, यह सोचकर मनमें कुछ ज्ञानका भी आविर्भाव हो रहा था। इसी तामसिक अवस्थामें रहकर कुछ देरके बाद उठ बैठी।

स्नानादिसे निवृत्त होकर बाहर बरामदेमे आई। देखा कि काकाके कमरेकी तरफ नौकर-चाकर व्यस्त होकर दौडे जा रहे है। कुछ घबराहट-सी हुई। एक नौकर उनके कमरेसे लौटकर तेजीसे दौड़ा आता था। मैंने जोरसे उसे पुकारकर पूछा—"छन्नू, क्या हुआ?"

उसने कहा—"अधेर हो गया, बीवी, काका अपने पलँगपर बेहोश पड़े हैं। डाक्टर आए हुए हैं।"

यह कहकर वह अपने कामको चल दिया। "भगवान, यह दूसरा वज्रपात क्या सहन हो सकेगा!" यह सोचती हुई, लड़खड़ाते हुए पाँवोंसे मै काकाके कमरेकी तरफ चली। किसीने अब तक मुझे खबर नहीं दी थी।

जाकर देखा लोग काकाके पलँगको घेर कर खडे है। काकाकी आँखें बद थीं। वह चित होकर लेटे थे। साँस बहुत रुक-रुककर चल रहा

था। गोरा-उजला मुँह बिल्कुल पीला पड़ गया था और कपालकी नसें ऊपरको उछलकर साफ दिखलाई दे रही थीं। कपालकी दोनों तरफकी हड्डियोंके बीचमें गढ़े पड़ने लगे थे। सिविल सर्जन आया हुआ था। वह उनके बाएँ हाथकी टहनीके ऊपर मासमेंसे एक पिचकारी द्वारा रक्त निकालनेकी चेष्टा कर रहा था और जितना रक्त निकलता जाता था उसे एक झाडनसे पोंछता जाता था।

मैंने आँखोंमें आँसू भरकर उससे अँगरेजीमें पूछा—"साहब, काकाको क्या हो गया?"

वह पिचकारीसे रक्त निकालता हुआ एक बार मेरी ओर ताककर बड़े शात और मधुर स्वरमें बोला—"'सेरीब्रल हेमरेज' हो गया है। दिमागमें ज्यादा खून जमा हो जानेकी वजहसे दिमागकी कोई नस टूट गई है। यह सब 'एपोप्लेक्सी' के चिह्न हैं।"

"इसका कारण क्या हो सकता है?"

"कई कारणोंसे ऐसा हो जाता है, पर साधारणत किसी कठिन दु खकी चिंताके कारण अधिक उत्तेजित हो जानेसे ही ऐसा हुआ करता है।"

"हाथसे आप रक्त क्यों निकालते हैं?"

"इस स्थानका सबध सीधा मस्तिष्कसे ही होता है। यहाँसे खून निकालनेपर सभवत दिमाग कुछ हल्का हो जाय। पर अब आशा बहुत कम है। हालत बहुत ज्यादा खराब है। I am afraid, it is too late now I am very sorry, Miss! मैं सिर्फ अपना कर्तव्य पालन कर रहा हूँ, बस। ईश्वर ही कुछ कर सकता है तो दूसरी बात है, नहीं तो अब इनके जीवनकी आशा छोड़ देनी चाहिए।"

ओफ! उसकी यह अतिम बात कैसी तीक्ष्णतासे मेरे कलेजेमें चुभी! मैं अब तक यह समझे थी कि यह मामूली बेहोशी है और थोडी देरमें अच्छी हो जायगी। अम्माँको भी शायद अब तक यही आशा थी। डाक्टरकी यह बात सुनकर उन्होंने सिर पीटना शुरू कर दिया।

पर इस एक क्षणके भीतर मेरे हृदयमें एक आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। मेरे अत्यत दुर्बल नारी-हृदयमें एक पौरुप-मय दृढता धीरे-धीरे अपना अधिकार जमाने लगी। ऐसी घोर सकटमय और निस्सहाय स्थितिमें इस प्रकारकी कठिन दृढताका होना असभव-सा था, इस कारण मुझे अपने हृदयके इस आकस्मिक परिवर्तनपर अत्यंत आश्चर्य हो रहा था। एक अज्ञात वाणी मेरे हृदयके कानोंमें कह रही थी—"राजू गया, काका जानेको तैयार हैं। महाकालका भयकर कोप तुम्हारी दुर्बलताका अनुचित लाभ उठाकर तुम्हारे पापका निष्ठुर बदला लेना चाहता है। तुम्हें पूरी तरहसे नष्ट-भ्रष्ट करके ही यह शात होगा। निष्ठुर दैवसे तुम्हें किसी प्रकारका सहारा नहीं मिल सकता। जब तक तुममें स्वय अपने पैरोंपर खडे होनेकी शक्ति उत्पन्न नहीं होगी तब तक नियतिके चक्रमें तुम बेभाव पिसती जाओगी। यदि तुम अनत शून्यके बीचमें अपना अस्तित्व कायम रखना चाहती हो तो इसी अवसरपर, इसी क्षण, जागरित हो जाओ और अपनी आत्माके भीतरसे विपुल शक्ति संग्रह करके कठिनसे-कठिन विपत्तिके लिये तैयार हो जाओ। यदि ऐसा न करोगी तो तुम्हें छिन्न-भिन्न होकर गहन शून्यमें बिखर जाना पडेगा और तुम्हारी आत्मा खड-खड होकर प्रलयाधकारमें विलीन हो जायगी।"

इस दैव-वाणीसे मेरे भीतर तत्काल एक अलौकिक और अवर्णनीय प्रेरणा उत्पन्न हो गई और अमृतका सचार होने लगा। मैंने एक लबी

साँस लेकर मन-ही-मन कहा—"काका, राजूकी तरह इस पापिनीके ऊपर कुपित होकर तुम भी बिना सूचना दिए जाते हो ! जाओ ! जाओ ! मैं इस समय निस्सहाय हूँ, मेरा कोई सहारा नहीं है, इसलिये इस समय तुम मुझे धोखा देनेमें समर्थ हुए हो। पर मेरी मृत्युके बाद मेरी सतत और उत्सुक आत्माको कैसे धोखा दे सकोगे ? कहीं जाओ, जन्मसे जन्मातर तक तुम दोनोंकी खोज किए बिना मैं कभी विश्राम नहीं लूँगी, इस बातका मुझे पूरा विश्वास हो गया है। इसी एक सान्त्वनाको लेकर मैं जीवन धारण करूँगी। जाओ, जाओ ! इस पतिताका कलंकित मुख अब अधिक न देखना ही तुम्हारे लिये उचित था।"

मैंने मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया।

दिन भर अवस्था प्राय एकसी रही। साँस उसी तरह रुक-रुककर चलता रहा। बीच-बीचमें बेहोशीकी हालतहीमें उलटियाँ भी होती जाती थीं। मेरे मनमें आखिर मिनट तक यह आशा बनी थी कि शायद किसी कारणसे फिर उनके प्राण लौट चलें। पर यह केवल दुराशा थी। जीवनका तेल धीरे-धीरे घटता जाता था। दिया मुरझाता जाता था। अंतको रातके समय, आठ बजेके करीब, दीप सदाके लिये निर्वापित हो गया !

२१

काकाकी मृत्युपर देश-भरसे शोक-प्रकाशक तार और पत्र अम्मोंके पास आए थे और समाचारपत्रोंमें भी कुछ दिनों तक इस सम्बधमें बड़ी सनसनी-सी फैली रही। ऐसा मालूम होता था जैसे सचमुच उनकी मृत्युसे देशकी जो भयकर हानि हुई है उसकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकेगी। पर मुझे इस शिष्टाचार-जनित दिखावटी

शोकका अनुभव अन्यान्य प्रसिद्ध नेताओंकी मृत्युसे पहले ही हो चुका था, इसलिये मैं इस सम्बधमें यथेष्ट उदासीन थी। आज काकाकी मृत्युको कुछ ही महीने हुए हैं पर कहीं उनका नाम न तो सुनाई देता है न कहीं पढ़नेमें ही आता है। देशोद्धारकी कीर्ति इतनी क्षणिक है! राजनीतिक क्षेत्रका कोलाहल इतना पोपला है! यदि काकाके राजनीतिक व्याख्यानों और सदेशोंकी अपेक्षा लोग उनके उन्नत स्वभावसे परिचित होते तो सभवत. उनकी कीर्ति अधिक स्थायी रहती।

पर मुझे इस बातका दु ख नहीं था कि उनकी कीर्ति स्थायी नहीं रही। उनकी आकस्मिक मृत्युसे जो गहरा धक्का मुझे पहुँचा था उसने मेरी मृत और गलित आत्माको पुनर्जीवित कर दिया, यह बात मेरे लिये अधिक महत्त्वपूर्ण थी।

काकाने राजूके शोकमें प्राण त्यागे थे, इस बातमें कुछ भी सदेह नहीं रह गया था। पर क्या राजूकी मृत्युसे मेरे हृदयमें चोट नहीं पहुँची थी? क्या काकाका दु ख मेरे दु:खसे बड़ा था? सभव है। पर मैं यह बात अच्छी तरहसे जानती हूँ कि राजूकी भयकर मृत्युके कारण जो घाव मेरे हृदयमें बना है वह कभी अच्छा नहीं हो सकता—उस स्थानपर सदाके लिये नासूर हो गया है, यह बात कैसे लोगोंको समझाई जाय! काकाका घाव तो उनकी मृत्यु हो जानेसे तत्काल ही अच्छा हो गया—उन्हें अधिक कष्ट ही नहीं भोगना पड़ा। साधारणत लोगोंका यह विश्वास रहता है कि जिस दु खसे आदमी प्राण त्याग देता है वही दु ख ही सबसे बड़ा होता है। पर यह भयकर भूल है। किसी दु खसे मृत्यु इस लिये होती है कि उसके कारण स्नायविक चक्रमें तत्काल एक जबर्दस्त उत्तेजना पैदा हो जाती है। यदि किसी कारणसे उत्तेजित व्यक्ति उस समय अपनेको सँभाल सके तो फिर वह दु ख उसे अधिक नहीं

धीरे-धीरे विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जाता है। पर एक प्रकारका दुःख ऐसा होता है जो तत्काल तो विशेष कष्ट-दायक मालूम नहीं होता, पर घावके पकनेपर धीरे-धीरे हड्डी-हड्डी और रोम-रोममें व्याप्त हो जाता है। ऐसे दुःखसे मृत्यु तो नहीं होती, पर आजीवन उसकी जलनसे आत्मा झुलसती रहती है। पुत्रकी मृत्युके शोकसे पिताकी मृत्यु हो जानेकी घटनाएँ बहुत देखनेमें आती हैं, पर यह बहुत ही कम सुना जाता है कि किसी माताने इस दुःखसे प्राण त्याग दिए। इससे यह नहीं समझा जा सकता कि पिताका दुःख माताके दुःखसे बढ़कर होता है। माताको दुःखकी जो अग्नि धीरे-धीरे जीवन-भर जलाती रहती है वह मृत्युसे कई गुना भयकर होती है। राजूकी मृत्युसे काका अपने प्राण त्यागकर दुःखसे मुक्त हो गए। पर मेरी नस-नसमें उस दुःखकी जो जलन व्याप्त हो गई थी उसके आगे मृत्युका क्षणिक दुःख कितना तुच्छ था!

पहले मेरा ऐसा विश्वास था कि मैं काकाको जितना प्यार करती हूँ उतना किसीको नहीं। पर अपने अनजानमें मेरा रोम-रोम केवल राजूको ही प्यार करनेके लिये उन्मुख रहता था, यह मुझे नहीं मालूम था। अपने भाईके लिये मेरा प्रेम इतना दृढ़, अतर्व्यापी और स्थायी था, यह बात मुझे उसकी मृत्युके बाद मालूम हुई। अन्य सब व्यक्तियोंके प्रति मेरा चचल प्रेम धीरे-धीरे विलीन होने लगा था, पर राजूके लिये मेरा हृदय अधिक-अधिक हाय-हाय करता जाता था। रह-रहकर मुझे यह भावना सतप्त कर रही थी कि मेरे कारण मेरे प्यारे भाईके हृदयमें जीवन-भर कॉटा गड़ा रहा और अतको उसका उन्नत और अमूल्य प्राण सबकी माया त्यागकर ससारसे उठ गया।

३२

एक दिन मै राजूके कमरेमें एक विशेष ग्रंथको ढूँढ़ रही थी। अचानक एक डायरी मेरे हाथ लगी। खोलकर पढने लगी। पढ़ते-पढते मेरा चित्त उसमें इस तरहसे लग गया कि खडे-खड़े मैंने उसे पूरा पढ डाला। मैं उसमें ऐसी लवलीन हो गई थी कि अपने तन-बदनकी सुध भी मुझे नहीं थी। राजूके हृदयसे मैं बहुत-कुछ परिचित थी, पर इस डायरीसे उसके सबधमें जो प्रकाश मुझे प्राप्त हुआ वह अतुलनीय था। डायरीका कुछ अश आज जन-साधारणके सम्मुख पेश करती हूँ—

"मेरी दिन-चर्याका क्रम कैसा अद्भुत है। जीवनका महत् उद्देश्य मेरे सामने होते हुए भी किसी निश्चित कार्यक्रमके नियमोंका पालन मुझसे नहीं होता। जीवनकी अनत गति देखकर मेरी बुद्धि चकरा गई है। मुझे चारों तरफ केवल अधकार ही अधकार दिखलाई देता है। कहींसे कोई सहारा मुझे नहीं दिखलाई देता, कहींसे कोई उत्साह मुझे नहीं मिलता। निराशा, निरुत्साह और निरुद्यम! मैं यह सोचकर हैरान हूँ और दुविधामें पड़ा हूँ कि मुझे जीना चाहिए या मरना। मैं जानता हूँ कि इस विकट समस्याने अनेक युगोंमें अनेक पुरुषोंको पागल बनाया है और इसका समाधान कोई नहीं कर सका। पर यह जानकर भी मैं बेबस इसी एक भावनासे आच्छन्न हुआ जाता हूँ।

"मैं चाहता हूँ कि जीवनके आनद-विलासमें सम्मिलित होकर इस दुःखमय संसारमें जहाँ कहीं जो कुछ भी पार्थिव सुख प्राप्त होता है उसे अन्यान्य सुखान्वेषियोंकी तरह ग्रहण करूँ। पर यह इच्छा मनमें उत्पन्न

होते ही थोड़ी ही देर बाद निविड़ घृणासे मेरा सर्वांग आलोड़ित हो जाता है, और फिर दु खके अतल सागरमें डूब जानेको जी करता है।

"दु खके प्रति क्यों मेरे मनमें ऐसी चाह है? दु खकी भावनाओंमें क्यों मुझे इतना आनद प्राप्त होता है? क्यों मैं सदा दु ख, अधकार और मृत्युका ही चिंतन किया करता हूँ? लोग उपदेश देते हैं कि मनुष्यको सदा आशान्वित होकर कार्य करते रहना चाहिए। वे कहते हैं कि जीवनमें सुख है, आशा है और आनद है, हमें आनदका ही अनुकरण करना चाहिए। पर मेरी ऑखोंके सामने क्यों प्रतिपल अन्याय, अत्याचार, नीचता और स्वार्थके बीभत्स दृश्य नाचते रहते है? क्यों हर घड़ी मेरा खून खौला हुआ रहता है? क्यों मैं अपनी बेबसीके कारण अपने दाँत पीस-पीसकर, जी मसोसकर रह जाता हूँ? क्या मनुष्यका जीवन सचमुच एक आनदमय स्वप्न है? अथवा किसी पैशाचिक देवताका निष्ठुर अभिशाप है? यदि आनदकी नींवपर जीवनकी इमारत खड़ी हुई है तो क्यों रात-दिन दुर्बलोंकी हाय-हाय सुनकर मेरे कलेजेमें लाखो छिद्र हो गए हैं? क्यों सबलोंमें स्वार्थपूर्ण भोगके प्रति उत्कट लालसा देखकर घृणा और प्रतिहिंसाके भावसे मेरा दम घुटने लगता है? क्यों रोग-शोक और दु ख-दारिद्र्यकी कालिमासे पृथ्वीमाताका समस्त शरीर जर्जरित और उत्तप्त हो रहा है? क्यों अतमें दुर्बलोंकी तरह सबलोंकी भी गति समान होकर दोनोंको किसी भयकर पाषाणसे टकराकर किसी अधकारमय निकराल छायाका ग्रास बनना पड़ता है? इन सब बातोंको देखते हुए भी कैसे मेरे मनमें आनदकी उमगें हिलोरें ले सकती हैं?

* * *

"मैं अकेला हूँ। मुझे जीवनका एक भी साथी कहीं कोई नहीं मिला। काका, अम्माँ और अपनी बहनोंके साथ मेरे स्नेह-प्रेमका चक्र

चल रहा है, पर क्या सचमुच हम लोग एक-दूसरेको प्यार करते हैं? मैं विश्वास नहीं कर सकता। सबको अपनी-अपनी जान प्यारी है, सब अपने-अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिये जीवन धारण किए हैं। संभव है, कोई मुझे सच्चे दिलसे प्यार करता हो, पर मैं किसीको प्यार नहीं करता। काका, अम्माँ, दीदी, लीला, इनमेंसे अभी कोई इस लोकसे चल बसे तो मुझे कुछ भी दुःख होगा, इस बातकी आशा मुझे नहीं है। कोई मरे या जिए, जब इस संबंधमें मैं उदासीन हूँ तो कैसे किसीको प्यार कर सकता हूँ! हाँ, रक्तका संबंध अवश्य प्राकृतिक नियमोंके अनुसार कुछ-न-कुछ असर दिखलाता है। अपने घरके लोगोंके साथ मैं केवल इतने ही बंधनमें बँधा हूँ।

"मैं इस निर्जन विश्वमें अकेला हूँ, इस अनुभूतिकी वेदना कैसी तीव्रतासे नित्य मेरे मर्मको विद्ध करती है! इस वृहत् संसारमें एक व्यक्ति भी मेरी यातनाओंका, मेरी भावनाओंका साक्षी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने रात-दिनके सांसारिक चक्रमें व्यस्त है, और मैं अकेला रात्रिके गहन अंधकारमें तारोंको गिनता हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि लोग मेरी इस डायरीको पढ़कर कहेंगे कि यह एक अनुभवहीन अव्यावहारिक, आलसी व्यक्तिकी पोपली भावुकता है और कोरी कविता है। हाय मेरे भगवान, कैसे मैं लोगोंको विश्वास दिलाऊँ कि मेरा रोम-रोम केवल इसी अंधकारमय सत्यके लिये लालायित है!

* * * *

२

"पापी पेटके भारसे जो लोग मुक्त हो गए हैं, खाने-पीनेकी चिंता नहीं है, उनमेंसे कोई राजनीतिके

कोई संसारकी भलाईमें लगा है, कोई देशोद्धारमें रत है, कोई व्याख्यानों और रचनाओंद्वारा परोपदेशमें व्यस्त है। पेटकी चिंतासे मैं भी मुक्त हूँ, पर ससार अथवा देशका हित मैं किसी रूपमे भी करनेके योग्य नहीं हूँ। अपनी वैयक्तिक आत्माके अनत रहस्यके उलझनसे ही मुझे छुटकारा नहीं मिलता। एक बिंदु आत्माके भीतर वासनाओंकी कैसी-कैसी भयंकर लहरें प्रबल वेगसे प्रवाहित होती हुई क्षुब्ध गर्जनसे उद्दाम क्रीड़ा करती जाती हैं! प्रकृतिकी यह कैसी आश्चर्यमयी लीला है! घृणा, प्रेम, आनद, विषाद, प्रतिहिंसा, करुणा, धैर्य और उत्तेजनाका ताड़न प्रतिक्षण कैसी विचित्रताके साथ मनुष्यके भीतर चला करता है! इन सब विकारोंसे मुक्त होनेके लिये मैं रात-दिन छटपटाता रहता हूँ, पर न मालूम किस रहस्यमय लोकसे, किस अधकारमय युगसे, कौन अचिंतनीय शक्ति मुझे मेरी इच्छाके विरुद्ध धर दबाती है!—मेरी आत्माकी सब स्वतत्रता पलभरमें नष्ट हो जाती है, और मैं अपनी आतरिक, अव्यक्त वासनाओं और विकारोंका क्रीतदास बन जाता हूँ। हाय, क्या अनत-काल तक मनुष्यकी वैयक्तिक आत्मा और प्राकृतिक शक्तिका सग्राम इसी तरह चलता रहेगा? क्या तात्विकोंका ज्ञान सब ढकोसला है? अथवा—

* * * *

"मुझे देखकर बहुत-से लोग संभवत यह समझते हैं कि यह नवीन युवक कैसा भाग्यशाली है! कैसा जगमगाता हुआ रूप है, कैसा गठीला शरीर है, कैसा अच्छा स्वास्थ्य है, और तिसपर धनी पिताका इकलौता पुत्र है और रंगमहलमें रहता है! संभवत वे लोग विचारते हैं कि एक परमा सुदरी कन्याके साथ मेरा विवाह होकर उसके साथ रंग-रहस्यमें मैं समस्त जीवन आनंदपूर्वक बिता दूँगा। ठीक है। जीवनके सुख

और आनदके आदर्शके सबधमें लोगोंकी अपनी-अपनी धारणा ही तो है! जीवनको कुछ लोग एक निष्कटक राजमार्ग समझते है जो मोटर तथा पाथेय मिलते ही आनदपूर्वक बिना किसी कष्टके तय किया जा सकता है। उन लोगोंकी धारणामें कठिनाई जो कुछ है वह राजमार्गकी दूरी और पाथेयका अभाव है। यदि केवल यही भेद होता तो कोई बात नहीं थी। पर 'क्षुरस्य धारा'—वाली बात भुलाने योग्य नहीं है। वह निकट सत्य है।

* * * *

"पर क्या सचमुच मेरे इस भावुक कैशोर हृदयमें स्त्रीके लिये कोई स्थान नहीं है? प्रेमकी विकट वासना क्या मेरे मर्मको कभी नहीं छेदती? क्या मेरा हृदय पत्थरकी तरह कठोर और रूखे नैयायिककी तरह तात्विक है? जो लोग मेरे निकट रहकर नित्य मेरी दिन-चर्या देखते हैं उनमेंसे बहुतोंका यह भी ख्याल है कि मैं विशुद्ध तात्विक हूँ और सासारिक बातोंके प्रति एकदम उदासीन हूँ। मानवात्माको ये लोग गगाकी नहर समझते हैं जो एक सुनिर्दिष्ट, सुनिश्चित मार्गसे होकर बहती है। आत्माके सागरकी उत्ताल-तरग-मालाओंके निकराल प्रवाहसे ये लोग परिचित नहीं हैं। उन्हें खबर नहीं है कि इस सागरकी अनत-गति-सपन्न प्रलयकर मूर्त्तिको किसी सुनिश्चित गतिके बधनमें नहीं बाँधा जा सकता।

* * *

"प्रेमको लेकर ही मैंने जन्म धारण किया था और प्रेमको लेकर ही जीवन बितानेका मेरा सकल्प था। पर इस सर्वशोषी तृष्णाके निवारणका कोई उपाय मै इस जन्ममें नहीं देखता। कौन मेरे उत्कट वासनामय हृदयके सर्वध्वंसी प्रेमको स्वीकार करेगा? कौन मेरे इस उत्तप्त

प्रेमकी आच सहन कर सकेगा ? अपने इस क्षुद्र जीवनके अल्प समयमें संसारका जो कुछ अनुभव मुझे हुआ है उससे मैंने यही निश्चय कर लिया है कि अपने उत्कट प्रेमकी प्रलयाग्निको किसीके आगे व्यक्त न कर उसे अपनी ही राखसे ढकना होगा। यही कारण है कि मैं किसी भी सुंदरी किशोरीके साथ अधिक हेलमेल बढाकर उसके आगे अपना हृदय व्यक्त करनेकी तनिक भी इच्छा नहीं रखता। दीदीकी कितनी ही सहेलियाँ नित्य हमारे यहाँ आती, जाती रहती हैं। दीदीने उन सबसे मेरा परिचय करा दिया है। पर मुलाकात होनेपर दो-एक बातें करके मैं उदासीनताके साथ उनसे मुँह फेर लिया करता हूँ। संसारका समस्त स्त्री-समाज मुझे एक monotonous affair—एक वैचित्र्यहीन धधा—जान पडता है। कौन बतला सकता है कि मेरे मनको समझनेवाली स्त्री मुझे कहाँ मिलेगी !

* * *

" मेरे रूपका आकर्षण स्त्रियोंके लिये कितना प्रबल, कितना सम्मोहक है, इसका अनुभव मुझे अच्छी तरह हो चुका है। पर मुझे इस बातका बिलकुल गर्व नहीं है। अपने उद्दाम रूपकी प्रचड ज्वालासे मैं स्वय झुलसा जाता हूँ। प्रेमकी प्यासी कितनी ही करुण आँखोंकी मुग्ध दृष्टिने इस ज्वालामें फोंदकर, भस्म होकर जल मरनेकी इच्छा प्रकट की है। पर मैं जल मरनेकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीको नहीं चाहता। मैं ऐसी स्त्रीको चाहता हूँ जो मेरे रूप और प्रेमकी अग्निको अपने हृदयकी ज्वालामें विलीन करके शात और सयत रूपसे जीवनका जटिल चक्र निभा सके। पर जिस समाजमें मैं रहता हूँ उसमें ऐसी स्त्रीका मिलना असंभव है। पीडन, निर्यातन और आत्मत्यागके अनुभवके बिना स्त्रीमें इस गुणका विकास नहीं हो सकता। केवल माधवी दीदीमें मैंने यह

अपूर्व गुण पाया है। दारिद्र और दुःखके घोर अंधकारके भीतर वह जगमगाता हुआ अमूल्य रत्न मैंने पाया है—जिन खोजा तिन पाइयाँ। इस प्रकारकी प्रकृतिकी स्त्रीके दर्शनकी उत्कट लालसा मेरे हृदयमें वर्त्तमान थी। भगवानने मेरी मनोकामना सफल कर दी है। मेरी भक्तिरसविह्वल उच्चाकाक्षाकी सिद्धि हो चुकी है। माधवी दीदीके उन्नत और पवित्र चरणोंके तले अपने गर्वित हृदयकी अकपट श्रद्धाजलि प्रदान करनेमें समर्थ होनेके कारण मैं अपनेको कृतार्थ और अपने जीव-नको धन्य समझ रहा हूँ। मेरे जीवनकी संगिनी मुझे इस जन्ममें किसी प्रकार नहीं मिल सकती इसलिये इस बातके लिये रोना अब वृथा है।

* * * *

३

"डाक्टर कन्हैयालालको मैंने जिस दिन पहली बार देखा तो उन्हें देखते ही एक अनोखी अप्रिय अनुभूतिसे मैं सिहर उठा। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे जो एक विशेष वेदना कितने ही जन्म पहले मेरे हृदयके तल-प्रदेशमें बलपूर्वक गाड़ दी गई थी, वह फिर आज नए सिरेसे जाग पड़ी—जैसे मेरे जन्मजन्मातरका वैरी आज बहुत दिनोंके बाद मेरे प्राणोंकी घातमें आ पहुँचा है। क्यों मुझे ऐसा प्रतीत हुआ? उनसे परिचय होनेके पहले ही क्यों मेरे दिलमें यह बात जम गई? क्या पूर्वजन्मका सस्कार इसीको कहते हैं? सभव है। पर कुछ भी हो, डाक्टर साहबके प्रति घृणा और क्रोधका भाव मेरे भीतर दिन-दिन बढ़ने लगा है और साथ ही एक अनोखे भयका संचार भी होने लगा है।

* * * *

" जिस व्यक्तिको मै जी-जानसे घृणा करता हूँ उसे दीदी क्यों इतना चाहती हैं ? भगवान ! क्या भाई और बहनकी प्रकृतिमें इतना भेद हो सकता है ? जिस दीदीके साथ बचपनमें खेल-कूद करके मैंने आनद-के दिन बिताए हैं, जिसके साथ मैं दो-चार साल पहले तक बेधड़क होकर, बिना किसी सकोचके, हिलमिलकर रहा करता था, स्नेहपूर्वक कलह किया करता था, जिसके हृदयको मैं अपने हृदयसे बिलकुल भिन्न नहीं समझता था, उसकी प्रकृतिसे मेरा भेद कुछ वर्षोंसे धीरे-धीरे बढ़ता चला गया है और अब यह भेद चरम सीमाको पहुँचना चाहता है ।

* * * *

" डाक्टरके किस गुणपर दीदी मुग्ध हुई हैं ? उसमें ऐसी कौनसी विशेषता है ? सौंदर्य ? वाक्-चातुर्य ? सभव है । पर क्या एक उन्नत पुरुषका आदर्श इन्हीं दो गुणोंमें समाप्त हो जाता है ? इस शख्समें पुरुषत्वकी दृढता, गाभीर्य और भावावेश कहाँ पाया जाता है ? उसमें पाई जाती है केवल चापलूसी, तुच्छ व पोपले ज्ञानका दम, स्वार्थ-सिद्धिकी बुद्धि और उच्चाकाक्षाका पाखड । उसके स्वभावकी नम्रतामें निर्लज्जता भरी है, उसके सुमधुर शिष्टाचारमें नीचता पाई जाती है, उसकी चतुराईकी बातोंमें घृणित दर्पकी दुर्गंध आती है । इस निर्लज्ज ढोंगसे भरे आदमीको मैं अपनी समस्त अतरात्मासे घृणा करता हूँ । मैं कितना ही अपने मनको समझाता हूँ कि उसके प्रति बिलकुल उदासीन रहूँ, पर असह्य घृणा रह-रहकर उमड पडती है और मेरे सारे हृदयको तिक्त और विषमय कर देती है । हे भगवान ! ऐसे आदमीके साथ दीदीको अपने एकान्त कमरेमें हँसी-खुशीकी बातें करते देखकर मेरा हृदय जलकर भस्म हुए बिना कैसे रह सकता है ? हाय, मेरा कलेजा रात-दिन असह्य आँचमें भुनता रहता है, और मेरी दीदी जो मुझे

बचपनमें इतना प्यार करती थी, यह बात देखते हुए भी नहीं देखना चाहती। उसे आज मेरी परवा बिल्कुल भी नहीं है। इसी लिये मैं कहता हूँ मनुष्यका प्रेम स्वार्थजनित है, भाई-बहनका प्रेम क्षणिक है, माता-पुत्रका प्रेम झूठा है और पति-पत्नीका प्रेम ढोंग है।

* * * *

" इस डाक्टरका साहस कितना भयकर है! वक्त-वेवक्त वह वेधड़क दीदीके कमरेमें चला जाता है। दीदीके मनमें अथवा व्यवहारमें भी किसी प्रकारका सकोच नहीं जान पड़ता और काका व अम्मॉ इस सबधमें बिलकुल उदासीन है। उदासीन? नहीं। अम्मॉ तो चाहती है कि डाक्टरके साथ दीदीका हेलमेल बढे। भगवान! औरतोंको तुमने कैसी मनोवृत्ति दी है! डाक्टरके प्रति विद्वेष और द्रोहके कारण कभी-कभी मैं यहाँ तक सोचने लगता हूँ कि स्त्री-जातिमें पर्देके प्रचलनपर जिस व्यक्तिने पहले-पहल मानव-जातिके सम्मुख प्रस्ताव पेश किया होगा वह बड़ा भावुक, दूरदर्शी, और सहृदय रहा होगा। मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ कि पर्देकी प्रथा अत्यंत हास्यास्पद और नाशकारी है, पर बीच-बीचमें, इच्छा न होनेपर भी, इस प्रकारकी कुभावना मेरे मनमें उत्पन्न हो जाती है। मैं विवश हूँ, मै लाचार हूँ, मेरी मति दिन-दिन भ्रष्ट होती चली जाती है।

* * * *

" दीदीके प्रति मेरे मनमें क्या भाव रहता है,? क्रोध, घृणा अथवा प्रतिहिंसा? निश्चयपूर्वक कुछ नहीं बतला सकता। शायद इन तीनोंका सम्मिश्रण वर्तमान है। पर बीच-बीचमें, जब मैं दीदीको अकेले अपने कमरेमें उदास और एकांत-चिंतामें मग्नतापा हूँ, तब हृदयमें न मालूम

कौनसी पुरानी वेदना जाग पड़ती है और बेवस मेरी आत्मा करुणा और स्नेहसे गद्गद हो जाती है। किंतु डाक्टरको उसके कमरेमें देखते ही फिर वही घृणा और प्रतिहिंसा उमड़ी पड़ती है। मेरा सारा शरीर काँपने लगता है और मैं अपने कमरेमें जाकर छाती पीटकर लेट जाता हूँ।

*　　*　　*

" माधवी दीदीके यहाँ दीदीको इस ख्यालसे ले गया था कि उसे कुछ चैतन्य होगा—माधवी दीदीकी अतरात्माका तेज उसपर कुछ असर करेगा। पर अब समझ गया हूँ कि ऐसा होना असंभव है।

*　　*　　*

४

" माधवी दीदीके पति आते ही सख्त बीमार पड़ गये हैं। मेरी इस जगज्जननी दीदीके मनमें कैसी बेकली समाई हुई है! संसारकी यह माता अभी तक अपने आतरिक वैभव, अपनी आतरिक शक्तिसे परिचित नहीं है। देवि! जगत्को छलनेके लिये ही क्या तुमने अपना यह करुणामय मायावेश धारण किया है? क्या तुम अपना विकराल कालिका-रूप जान-बूझकर ससारकी आँखोंसे छिपाए बैठी हो? संतानके पालनमें रत रहकर तुम सतानके विध्वसका सुनिश्चित कर्त्तव्य कब तक भूली रहोगी? अपना दृढ़ और कठोर रूप तुम क्यों इस कठिन स्थितिमें व्यक्त नहीं करतीं? क्यों अपनी अत्यंत सुकुमार और कोमल करुणासे मेरा हृदय पिघलानेमें लगी हो?

*　　*　　*

" दीदीकी निर्लज्जता इस हद तक पहुँच गई है कि अब रातको भी वह डाक्टरके साथ सिनेमा और थियेटर देखनेमें गायब रहती है।

क्या समझकर, किस साहसके बलपर वह ऐसा करती है ? क्या वह मेरे विद्वेषकी आगमें आहुति डालकर अपनी प्रतिहिंसाके कारण सारे कुटुम्बको फूँक देना चाहती है ? अच्छी बात है। जब विधाताकी इच्छा ही यही है कि सारा कुटुम्ब अत्यन्त दुर्गतिके साथ विनाशको प्राप्त हो तो उसकी यह इच्छा सफल हो, मैं भी यही प्रार्थना करता हूँ। दीदी, मेरे कलेजेको और भी तेज़ आँचमें भूनकर उसके जितने टुकड़े चाहो कर डालो, सारे घरकी अन्तरात्मामें विध्वंस मचा दो, और प्रलयकी ज्वालामें सबको जलाकर हास्य करो। जो जी चाहे मन भरके कर डालो, जिससे तुम्हारे दिलमें कोई अरमान बाकी न रहने पावे।

* * *

" माधवी दीदीके पतिको पृथ्वीकी कोई शक्ति नहीं बचा सकी। निखिल-संहारक रुद्रकी जब यही इच्छा थी, तब उसके विरुद्ध कौन अपना बल काममें ला सकता था ? मैंने सोचा था कि इस घटनासे माधवी दीदी वज्राहत होकर बावली-सी बन जायँगी। पर मैं मूर्ख इतने दिनों तक उनकी प्रकृतिकी दृढ़तासे परिचित नहीं हुआ था। कितनी शान्त करुण और साथ ही वज्रकठिन दृढ़तासे उन्होंने इस घोर संकटके समय भी अपना गाम्भीर्य कायम रक्खा ! पतिकी मृतावस्थाके समय कैसी अलौकिक आभासे उनका मुखमण्डल प्रदीप्त हो रहा था ! अपने चिर-जीवनकी इस आराध्य देवीको मैंने अत्यन्त श्रद्धाके साथ मन-ही-मन प्रणाम किया। मेरे हृदयके भीतर भक्ति और श्रद्धाका इतना रस छिपा हुआ है, यह मैं नहीं जानता था। माधवी दीदीने उद्गमके ठीक स्थान-पर आघात किया था इसलिये उस गुप्त रसने प्रबल वेगसे उमड़कर मुझे पुण्यकी अविरल धारामें प्रवाहित कर दिया था। मुझे इस जीवनमें इतना ही संतोष है कि स्त्री-जीवनकी अनेक चंचलता और दुर्बलताओंके

दलदलसे होकर जीवनके पथमें जाते हुए मुझे अतको नारीका यथार्थ स्वरूप दिखलाई दिया है।

* * *

" स्मशानमें जाकर चिता तैयार करके उसके ऊपर लाश रखकर जब हम लोग उसमें आग जला चुके तो थकावटके कारण सब बालूके ऊपर बैठ गए। आसमानमें बादल छाए हुए थे। सर्वत्र एक अवसाद-जनक उदासी व्याप्त थी। चिताग्निकी लपटें धीरे-धीरे उग्र रूप धारण करती जाती थीं। मैं बहुत देर तक निर्विकार भावसे इन लपटोकी बहार देखता रहा। धीरे-धीरे लाशका मुँह विकृत हो गया और नीचे पैरोका मास, हड्डी और चर्बी जल-जलकर, पिघल पिघलकर नष्ट-भ्रष्ट हो गए। ज्वालाओंका भीषण रूप साँय-भाँय करके उग्रतर होता चला गया।

" ज्ञानी लोग यह उपदेश बराबर देते आए हैं कि मनुष्यके नश्वर शरीरका ख्याल न करके उसकी आत्मापर ध्यान दिया करो। पर लाख यह उपदेश सुननेपर भी मनुष्यके सुदर शरीरके प्रति जो एक मोह-जनित संस्कार अतरात्मामें बद्धमूल रहता है वह सहजमें जाना नहीं चाहता। इस कारण चिताग्नि जब इस अनुपम देहको विकृत कर देती है तो इस वीभत्स दृश्यसे हृदयमें एक प्रकारकी उत्कट भीति उत्पन्न हो जाती है। मेरा भी यही हाल था। यह दृश्य देखकर भय, चिंता और आध्यात्मिकताकी तरगें रह-रहकर मेरे चित्तको आदोलित कर रही थीं। स्मशान-वैराग्य प्रसिद्ध ही है। मैं सोचने लगा—' एक दिन मेरे अपरूप सौंदर्य-मडित शरीरका भी यही हाल होगा। मर्मर-प्रस्तरकी सजीव मूर्तिके समान मेरा सुदर, सुडोल, सुगठित और चलता-फिरता हुआ शरीर विकृत, विगलित और गतिहीन होकर जिस अवस्थाको प्राप्त होगा उसका

अनुमान ही नहीं किया जा सकता । नाना रसों और आवेगोंसे प्रतिक्षण प्रकंपित रहनेवाला मेरा हृदय न मालूम किस शून्यमें विलीन हो जायगा और नाना चिंताओंसे आच्छन्न रहनेवाला मेरा चंचल मस्तिष्क बिलकुल निश्चल और अचेत पड़ जायगा । विपुल प्रेम और आनंदके भावसे फूली हुई आत्माका भी अस्तित्व रहेगा या नहीं इसमें भी संशय है । किस अंधकारके विकराल जबड़ोंका ग्रास बनना होगा, यह मालूम नहीं । तब कैसा रहेगा ? इस भीषण, अनिश्चित अंधकारसे मिलित होनेकी उत्कट लालसा यदि किसीमें पाई जायगी तो वह मेरे हृदयमें व्याप्त हिंसा, विद्वेष और घृणाके भावोंमें । मेरे ये भाव मुझे अनंतकाल तक अनंत अंधकारमें विलीन रहनेको बाध्य करेंगे ।'

" सोचते-सोचते मेरा दिल भयके कारण जोरोंसे धड़कने लगा । मैं बैठा नहीं रह सका और उठकर गंगाके किनारे-किनारे टहलने लगा । गंगाका शांत और स्निग्ध प्रवाह कैसी सुमधुर प्रसन्नतासे, अविरल गतिसे आगेको बढ़ता चला जाता था ! कुछ देर तक मैं अन्यमनस्क-सा होकर टहलता रहा । धीरे-धीरे मेरा चित्त कुछ स्थिर हो आया और एक सुनिश्चित संकल्प मेरे मनमें गड़ गया । मैंने सोचा—' किसी तरहसे भी हो, विद्वेष और घृणाके भावको मनसे उखाड़ फेंकना होगा और मृत्युके रोमांचकारी आलिंगनके लिये हर घड़ी तैयार रहना होगा । डाक्टर कन्हैयालालकी सूरतसे मुझे चिढ़ है और दीदीके प्रति मेरे मनमें विद्वेष भरा है—मौतके द्वारमें इन भावोंको लेकर यदि मैं जाऊँगा तो मेरा आत्म-सम्मान जाता रहेगा । प्रेम और आनंदसे जब मैं भरपूर रहूँगा तो मृत्यु मुझे कितना ही दबावे, मेरी गर्वित आत्माको कभी दमन करनेमें समर्थ नहीं होगी ।'

"मैंने अपने मनको यह विश्वास दिलानेकी चेष्टा की कि डाक्टर कन्हैयालाल बड़े सज्जन और प्रेमी आदमी हैं। यदि वह बदलेमें मेरी दीदीका प्रेम चाहते हैं तो कोई अन्याय नहीं करते और यदि दीदी उनके गुणोंको देखकर उन्हें चाहती है तो उसे इस बातका पूरा अधिकार है। यदि ऐसा है तो मैं क्यों वृथा इस बातसे जलता हूँ! स्त्री-पुरुषका पारस्परिक प्रेम स्वाभाविक है और अपनी दीदीकी प्रसन्नता देखकर मुझे भी हर्ष होना चाहिए। किसीके दोष और दुर्बलतापर विचार करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। जो व्यक्ति जिस बातपर प्रसन्न रहता है वही उसके लिये अच्छा है। सभी मनुष्योंकी वृत्तियाँ एक-सी होती हैं। डाक्टर कन्हैयालालमें और मुझमें कोई भेद नहीं है।

"इस प्रकार मैंने अपने मनको समझाया। धीरे-धीरे मेरी आत्मामें एक उद्दीप्त गरिमा जाग उठी और मैंने अपनेको तुच्छ हिंसा और विद्वेषके भावसे बहुत ऊँचा उठा हुआ पाया। विजयके उल्लाससे मेरा हृदय जगमगा उठा और एक अपूर्व आध्यात्मिक स्फूर्तिसे मेरे पख उड़नेके लिये फड़फड़ाने लगे। मैंने सोचा—'रात-दिनकी दुश्चिंताओंसे मुक्ति पाकर यदि इसी प्रकार आनंदकी उमगमे मैं सदाके लिये अपनी दो आँखोंको शीघ्र मूँद सकता तो कैसा अच्छा न होता! इस समय मेरे मनमें किसीके प्रति घृणा नहीं है, किसीके प्रति द्रोह नहीं है। मेरी आत्मा समस्त प्राणियोंको, समस्त विश्वको सुमधुर प्रेमसे आलिंगन कर रही है। इसी अवस्थामें यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो मौत भी मुझे स्नेह गले लगाती!'

* * *

५

"बहुत देर तक इस प्रकारकी भावनाओंमें निमग्न रहनेके बाद जब मुझे चैतन्य हुआ तो मुझे अपनी स्थितिपर तरस आया। मैंने सोचा—

'इतनी छोटी अवस्थामे, जब मै यौवनके द्वारपर ही अच्छी तरहसे नहीं पहुँचने पाया हूँ, इस प्रकार जीने-मरनेकी चिंताओंमें मग्न रहनेकी क्या ऐसी आवश्यकता मुझे पड़ी थी ! ससारमे इतने आदमियोंको मै रात-दिन जीवनका आनद लूटते और हँसते-खेलते हुए देखता हूँ, साठ-साठ सत्तर-सत्तर वर्षके वूढ़ोंको जीवनकी सभी बातोंमें दिलचस्पी लेते हुए देखता हूँ, तब अपनी इतनी अल्पावस्थामें मैं क्यों जीवनसे उकता गया हूँ ? क्यों मै अपनेको अकेला, स्नेह-वंचित और निरुपाय समझ रहा हूँ ?'

"फिर सोचा—'मैं अकेला ही तो हूँ, इसमें सदेह ही क्या है ! श्मशानसे लौटकर जब मैं घर जाऊँगा तो कोई वहाँ मेरी कुशल पूछनेवाला नहीं है, कोई दिलासा देनेवाला नहीं है। दीदी अपने ही सुख-दु खकी कल्पनामें व्यस्त रहती है, अम्माँ घरमें नहीं है, और यदि घरमें होती भी तो कभी भूलकर भी मेरी मानसिक वेदनाओंका हाल न पूछती। काकाको राजनीतिक भावनाओंसे विलकुल फुर्सत नहीं रहती, इसलिये उन्होंने कभी मुझसे यह न पूछा कि मेरे भावी जीवनका उद्देश्य क्या है और मैं आजकल किन चिंताओंमें लगा हूँ। लीला मुझे थोड़ा-बहुत प्यार करती है, इसमें सदेह नहीं, पर वह अभी बच्ची ही है,—उसकी समवेदनाका कोई महत्त्व नहीं है। ऐसी हालतमें मेरे लिये जैसा श्मशान है घर भी वैसा ही है।' मेरी आँखोंसे दो-एक बूँद आँसूके टपक पड़े। मैंने वलपूर्वक अपनी दुर्बलताको दमन किया।

* * * *

"श्मशानसे लौटकर कुछ देरके लिये माधवी दीदीके पास वैठा रहा। पर उनके साथ वैठनेसे मेरा विपाद ही बढ़ा, किसी प्रकारका उत्साह प्राप्त नहीं हुआ।

" जब घर पहुँचा तो अँधेरा हो गया था। दीदी आज अकेली और उदास बैठी होगी, इस ख्यालसे उसीके पास जाकर कुछ देर तक बैठे रहनेका विचार किया। उसके प्रति आज मेरे मनमें करुणाका भाव जागरित हो गया था। कमरेके पास जाकर मैंने बाहरसे पुकारा—'दीदी!' कमरेके भीतर अधकार छाया हुआ था और बत्ती नहीं जलाई गई थी। कुछ आगे बढकर उस प्रायाधकारमें मैंने जो दृश्य देखा उससे मेरे रोंगटे खड़े हो गए, हाथ-पाँव कॉपने लगे और दिल बेतहाशा धड़कने लगा। यदि वही दृश्य मैं किसी अन्य समय देखता तो इतना उत्तेजित न होता। पर सायकाल और रात्रिके बीचका यह समय अत्यत विकट था। मैंने देखा कि मेरी दीदी अपनी चारपाईमें डाक्टरकी गोदमें बैठी हुई थी और अब मुझे देखकर उसने घबराहटसे उठनेकी चेष्टा की। मैं विभ्रांत होकर लडखडाते हुए पैरोंसे उसी दम अपने कमरेकी तरफ चले चला। मुझे चक्कर आ रहा था और सारा मकान और सारी पृथ्वी मुझे घूमती हुई मालूम होने लगी।

" कमरेमें पहुँचकर मैं बिलकुल मृतावस्थामें लेट गया। एक तो दिन-भरकी थकान और दुश्चिंताएँ और तिसपर यह दृश्य! हिस्टीरिया-ग्रस्त औरतकी तरह मै प्रबल वेगसे अपने हाथपाँव छटपटाने लगा।

" बहुत देर तक मैं बेचैन होकर करवटें बदलता रहा। जब धीरे-धीरे कुछ स्थिर हुआ तो निश्चित सकल्पसे मेरा हृदय उल्लसित हो उठा। जिस बातकी इच्छा मुझे बहुत दिनोंसे थी, और, नाना कारणोंसे, जिसके लिये मैं आज तक हिचकिचा रहा था, उसकी पूर्त्तिके सम्बधमें आज मेरे हृदयसे सब दुविधाएँ दूर हो गईं और मैंने उसके लिये दृढ संकल्प कर लिया।—मैंने आत्महत्या करनेकी ठान ली।

* * * *

" मैने उपनिपत् और गीताका यथेष्ट अध्ययन किया है और आज एक वार फिर उनपर विचार किया है। मैं जानता हूँ कि आत्महत्या करना महामूर्खता और कायरता है। पर जत्र मनुष्य विशेष–विशेष स्थितियोंके जालमें जकड़ जाता है तो उसका ज्ञान उसे लेशमात्र सहायता नहीं देता। मुझे अत्र आत्महत्या करनेसे स्वर्गका देवता भी नहीं रोक सकता, कोई ज्ञान, कोई उपदेश मुझे निवारण नहीं कर सकता, अब जीना मेरे लिये त्रिल्कुल असभव है। आत्महत्याकी जो उल्लासमय उमग, रात-दिनकी हाय-हाय और दुर्भावनाओंसे मुक्ति पानेकी जो उत्कट लालसा मेरे मनमें समा गई है उसके सामने गीताका मोक्ष नाचीज़ है। मैं जानता हूँ कि लोग कहेंगे—' मरके भी अगर छुटकारा नहीं मिला तो क्या करोगे? मर जानेसे ही क्या तुम मुक्त हो जाओगे?' हाय, जिसपर नहीं बीती है वह आराम कुर्सीपर बैठकर ज्ञानका खासा उपदेश दे सकता है, तोफाः तर्क कर सकता है।

" दीदी! तुम्हें अगर यही मजूर है तो मै चला। अब तुम्हारे पथमें कोई कटक नहीं रहा, अबसे कोई तुम्हारे निर्द्वंद्व सुखमें बाधा नहीं पहुँचावेगा। आज तक तुम्हारे दिलको मैने जितना दुखाया है, उसके लिये मन-ही-मन क्षमा चाहता हूँ। काकाके आनेकी राह देख रहा हूँ। कल-परसो जब काका लौट आवेंगे तब सब समाप्त हो जायगा।

* * * *

" बहुत सभव है, आज काका वापस चले आवेंगे। आज सुबहको फिर ईशोपनिषत् पढा। आत्महत्या करने जा रहा हूँ, पर उपनिषत् पढनेकी लालसा नहीं जाती। कैसी अद्भुत प्रवृत्ति है! मेरा यह विश्वास प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा है कि आत्महत्या करनेपर मेरी

आत्माको अपने विकासके लिये कोई उन्नत और आनदमय पारिपार्श्विक अवस्था प्राप्त होगी । यह विश्वास चाहे कितना ही भ्रांत हो, पर यह मेरे मनमें जम गया है ।

*　　*　　*

" बाहर नौकरोंने बड़ा शोर मचाया है । उनकी बातोंसे माळूम होता है कि काका आ गए हैं । मोटर भी आ पहुँचा है । अच्छा ही हुआ । लीला एक बार मेरे कमरेमें आई थी, पर मैं उससे बोला नहीं । उपनिषत्की जो पुस्तक मैं पढ़ने लगा था उसे पढ़ता ही चला गया । न माळूम क्यों, आज मैं लीलाके प्रति भी यथेष्ट उदासीन हो गया हूँ ।

" काका और अम्माँसे मिलनेकी इच्छा मैं नहीं रखता । इसलिये पहले ही यहाँसे निकल जाना चाहता हूँ । देखूँ, कहीं किसी मित्रके पास 'रिवाल्वर' मिलता है या नहीं ।

*　　*　　*

" बड़ी मुश्किलसे, बहुत खोजके बाद, एक जगहसे रिवाल्वर प्राप्त हुआ है । प्राय आधी रात बीतनेपर घर पहुँचा हूँ । इस आशकासे जल्दी नहीं आया कि घरके लोगोंको मेरी करतूत कहीं पहले ही माळूम न हो जाय ।

*　　*　　*

" सब ठीक है । मैं तैयार हूँ । हे सारे विश्वकी एकात्मा ! मुझे क्षमा करना । "

*　　*　　*　　*

डायरी पढ़ते-पढते आँसुओंकी अविरल धाराओंसे मेरे गाल न जाने कबसे भीगे हुए थे, मुझे माळूम भी नहीं होने पाया—मैं इतनी तन्मय

हो गई थी कि यह बात जानने भी न पाई । जब पढ़ चुकी तो मैंने एक लंबी साँस ली और राजूकी आत्मासे क्षमा-भिक्षा और करुणाकी प्रार्थना करने लगी ।

३२

एक दिन था जब मैंने माधवी दीदीके यहाँ फर्शपर बैठनेमें अपना अपमान समझा था । पृथ्वी-माताके संसर्गसे मैं इतना परहेज रखती थी ! आज मेरा भाई राख बनकर श्मशानके धूलि-कणोंसे एकप्राण होकर पड़ा था ! मैंने मनमें अपने-आपको संबोधित करके कहा—"हतभागिनी, जब तक तू अपने दर्प, अपने मान, अपने बड़प्पन और अपनी आत्माको मिट्टीमें मिलानेमें समर्थ न होगी तब तक तेरे पापका प्रायश्चित्त नहीं होगा । भ्रष्टा अहल्या जिस प्रकार गौतमके शापसे वायुभक्ष्या, निराहारा और भस्मशायिनी बनी थी, उसी प्रकार तुझे भी अपने भाईकी पवित्रात्माकी तरह शुद्ध होनेके लिये कठिन नियमोंकी आँचमें अपनी आत्माको भस्म करना होगा—संसारके दु:खित और तप्त जनोंकी सेवा करनी होगी, दरिद्रताको अपनाना होगा, पृथ्वीकी धूलिको नित्य अपने मस्तकपर धारण करना पड़ेगा । दीर्घ-जीवनके अभ्याससे जब शुद्धि हो जायगी तब मृत्युके बाद दूसरे जन्ममें यदि किसी रूपमें राजूको पा सकी, तो उसकी बहन कहलाए जानेके योग्य तू हो सकेगी ।"

उठते, बैठते, सोते, जागते मुझे केवल राजूकी ही भावना व्याकुल करने लगी । क्षण-क्षणमें मेरे मानसमें केवल उसीकी मूर्ति जागरित होकर मुझे उन्मना करके एक अत्यंत तीक्ष्ण वेदनासे मेरा कलेजा छेदती जाती थी । पर यह वेदना मुझे बड़ी प्यारी लगती थी । यदि मैं इस वेदनाका अनुभव न करती तो बहुत संभव है मेरे प्राण कभी न टिकते । प्रायश्चित्तके लिये मेरे प्राणोंका टिकना परमावश्यक था ।

अपने एकसे-एक बढ़कर फैशनेबिल कपड़े फेंककर मैंने विशुद्ध खद्दर धारण कर लिया। यही नहीं, नित्य दो घंटे बैठकर चरखा चलानेका नियम भी मैंने रख लिया। इसलिये नहीं कि इससे देशका उपकार होगा या समाजकी सेवा होगी। अपनी पतितात्माकी शुद्धिके लिये ही मैंने यह व्रत ग्रहण किया था। कॉलेज जाना छोड़ दिया। दीन, दरिद्र, भूखे और कंगाले व्यक्तियोंको सप्ताहमें एक दिन भरपेट भोजन और कुछ दक्षिणा देनेका नियम भी रक्खा।

कुछ दिन तक इस प्रकारसे दिन बीते और मेरी आत्माको शान्ति प्राप्त होने लगी। डाक्टर साहब काकाकी मृत्युके बाद केवल शोक प्रकाश करनेके लिये एक दिन अम्मोंके पास आए। तबसे उन्होंने बिल्कुल ही आना छोड दिया। उनके न आनेसे मुझे और भी अधिक दृढ़ता प्राप्त हुई और व्रत निर्विघ्न चलने लगा। अपने नए जीवनके वैराग्यकी सफलतासे एक अपूर्व शांतिका संयत और स्निग्ध आनंद धीरे-धीरे मेरे हृदयमें जागरित होने लगा। प्राचीन कालकी तापसी महिलाओंके उन्नत चरित्रकी महत्तासे मैं धीरे-धीरे परिचित होने लगी।

कुछ दिन तक यह स्थिति रही। एक दिन मैं अन्यमनस्क होकर अपने भवनके फाटकके पास खडी थी और उदासीनताके साथ सड़कसे होकर आने-जानेवाले आदमियों, मोटरों ओर गाडियोंको देख रही थी। अचानक मैंने देखा कि डाक्टर कन्हैयालाल एक मोटरमें मेरे कॉलेजकी संगिनी कमलिनीको साथ लिये चले जा रहे हैं। मैं पत्थरकी मूर्तिकी तरह स्तब्ध रहकर दोनोंकी ओर ताकती रह गई। कमलिनी मुझे देखकर मेरे जले हुए कलेजेमें नमक छिड़कनेके लिये मंद-मंद मुस्करा रही थी। डाक्टर साहबने लज्जा या अन्य किसी कारणसे मुँह फेर लिया था। जब

तक मोटर मेरी आँखोंसे ओझल न हो गई, मैं उसीकी ओर आँखें लगाए रही।

जब मोटर अंतर्धान हो गई तो मेरा यम-नियम सब भग हो चुका था। प्रतिहिंसाकी प्रलयाग्नि फिर एक वार मेरे हृदयमें धधकने लगी। सिरमें झनझनाहट पैदा हो गई थी और चक्कर आने लगा था। मैंने फाटकके एक किनाडका डडा पकड़ लिया। राजूकी मृत्युकी कटकमयी वेदना और काकाकी मृत्युके शोकके अतीत एक अनोखी भावना मेरे मनमें उत्पन्न हुई। सुख-दु ख, जीवन-मृत्यु, पाप-पुण्य, और स्वर्ग-नरक, सब मेरे लिये एकाकार हो गए और शून्यका भैरव हुकार मेरे दोनों कानोंमें गूँजने लगा। कोई उपाय, कोई गति, कोई मार्ग न सूझनेपर उत्कट निराशाके वश होकर मैंने सोचा—" यदि मैं भले घरकी महिला न होकर ताडका राक्षसी होती तो उन दोनोंकी छाती फाडकर उन्हें मोटरसहित निगल जाती।"

*　　　*　　　*

मेरा व्रत भ्रष्ट हो गया था। अब मेरा जीना भी व्यर्थ था और मरना भी। मैं केवल आकुल होकर भगवानसे प्रश्न करने लगी—" दयामय, मुझे बता दो कि मैंने किसी पूर्व जन्ममें स्वाभाविक नियमोंका पालन करके नारीका जीवन पूर्ण रूपसे बिताया या नहीं ? अथवा वर्तमान जीवनकी तरह मेरे सभी पूर्व जीवन भी अर्थहीन, और लक्ष्यभ्रष्ट होकर व्यर्थताके गहन गह्वरमें विलीन हो गए ?"

